मेसर्स इंटीग्रेटेड फाइनेंस कंपनी लिमिटेड
बनाम
भारतीय रिज़र्व बैंक एवं अन्य इत्यादि

(2013 की दीवानी अपील संख्याएं 5505 से 5508)
16 जुलाई, 2013

[माननीय न्यायमूर्ति श्री सुरिंदर सिंह निज्जर एवं माननीय न्यायमूर्ति श्री पिनाकी चंद्र घोष]

कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 391 के अंतर्गत अपीलकर्ता, जो एक गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनी (एनबीएफसी) है, के संबंध में यह कि भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा अपीलकर्ता कंपनी के लेखा अभिलेखों का निरीक्षण किया गया तथा निरीक्षण प्रतिवेदन में भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम के प्रावधानों के उल्लंघन का प्रकटीकरण हुआ। इसके उपरांत भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा अपीलकर्ता कंपनी को सूचना-पत्र निर्गत किया गया। लाभप्रदता में कमी के कारण अपीलकर्ता कंपनी को अपने संचालन के संचालन में कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। तत्पश्चात अपीलकर्ता कंपनी ने अपने लेनदारों, अर्थात् जमाकर्ताओं एवं बांड धारकों के साथ समझौते की योजना प्रस्तावित की। उक्त समझौता योजना के अनुमोदन हेतु कंपनी अधिनियम के अंतर्गत याचिका दायर की गई, जिसे उच्च न्यायालय द्वारा निरस्त कर दिया गया। इस निरस्तीकरण की औचित्यता के संबंध में अभिनिर्णीत किया गया कि उक्त आदेश न्यायसंगत है। औचित्यपूर्ण—भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम के अध्याय III-बी को धारा 45 के समावेशन द्वारा इस स्पष्ट अभिप्राय के साथ अधिमान्य प्रभाव प्रदान किया गया है कि यह अन्य सभी विधियों, जिनमें कंपनी अधिनियम भी सम्मिलित है, पर प्रभावी रहेगा, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि किसी गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनी के मामले में कंपनी अधिनियम की धारा 391 के अंतर्गत कोई भी योजना तब तक विचारणीय न हो जब तक कि वह भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 45 क्यूए के प्रावधानों के अनुरूप न हो। तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट पाया गया कि अपीलकर्ता कंपनी द्वारा प्रस्तावित समझौता योजना में सद्भावना का स्पष्ट अभाव था। कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 391(1) सहपठित धारा

393(1) के अंतर्गत जिन महत्वपूर्ण तथ्यों का प्रकटीकरण अपेक्षित था, उनका प्रकटीकरण नहीं किया गया। उक्त योजना केवल इस उद्देश्य से प्रस्तुत की गई थी कि लघु जमाकर्ताओं को पुनर्भुगतान से बचा जा सके। यह योजना लोकनीति के प्रतिकूल भी थी तथा इसे भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 45 क्यूए(1) के अधिदेश से बचने के अप्रत्यक्ष उद्देश्य से प्रस्तावित किया गया था। अतः भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 की धारा 45 क्यूए के आलोक में यह निष्कर्ष निकाला गया कि उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश संधारणीय एवं न्यायसंगत है।

कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 391 के अंतर्गत समझौता योजना के अनुमोदन हेतु दायर याचिका के संबंध में कंपनी न्यायालय के कर्तव्य के विषय में यह अभिनिर्णीत किया गया कि कंपनी न्यायालय, किसी व्यवस्था अथवा समझौता योजना की निष्पक्षता एवं सद्भावना का परीक्षण करते समय मात्र औपचारिक स्वीकृति प्रदान करने वाला प्राधिकरण के रूप में कार्य नहीं करता। वह ऐसे महत्वपूर्ण तथ्यों के स्पष्ट अप्रकटीकरण की उपेक्षा नहीं कर सकता, जिनका इस निर्णय पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ सकता है कि उक्त योजना को अनुमोदित किया जाना है अथवा नहीं।

कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 391 के अंतर्गत अनुमोदन हेतु प्रस्तुत योजनाओं के संदर्भ में भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम के प्रावधानों की प्रयोज्यता के विषय में यह अभिनिर्णीत किया गया कि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम का अध्याय III बी एक स्व-निहित संहिता है। यह नहीं कहा जा सकता कि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम तथा कंपनी अधिनियम पृथक एवं भिन्न क्षेत्रों में संचालित होते हैं। साथ ही यह भी नहीं कहा जा सकता कि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम में निहित प्रावधान, केवल नियामक प्रकृति के होने के कारण, कंपनी अधिनियम के अंतर्गत अनुमोदन हेतु प्रस्तुत योजनाओं पर लागू नहीं होंगे। अतः भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 के अध्याय III बी के प्रावधान ऐसे मामलों में पूर्णतः लागू होंगे।

भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 के अध्याय III बी के समावेशन, उसके उद्देश्य एवं कारणों पर विचार किया गया।

भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 की धारा 45 क्यू में निहित अवरोध-रहित खंड की प्रयोज्यता तथा उसके क्षेत्राधिकार पर भी विचार किया गया।

विधियों की व्याख्या के सिद्धांतों के अंतर्गत, दो अधिनियमों के परस्पर प्रभाव के संदर्भ में यह अभिनिर्णीत किया गया कि परवर्ती अधिनियम को अधिमान्य प्रभाव प्राप्त होता है, अतः भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम,1934 के प्रावधान, कंपनी अधिनियम, 1956 के प्रावधानों पर प्रभावी होंगे, क्योंकि यह एक परवर्ती अधिनियम है।

अपीलकर्ता कंपनी का निगमण कंपनी अधिनियम, 1956 के अंतर्गत एक गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनी (एनबीएफसी) के रूप में किया गया था तथा यह किराया-क्रय व्यवस्था एवं पट्टा के व्यवसाय में संलग्न थी। भारतीय रिज़र्व बैंक ने, भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 की धारा 45 एन के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, अपीलकर्ता कंपनी के लेखा अभिलेखों का निरीक्षण किया। निरीक्षण प्रतिवेदन से 1934 के अधिनियम के प्रावधानों के उल्लंघन का प्रकटीकरण हुआ। तत्पश्चात, भारतीय रिज़र्व बैंक ने दिनांक 18 जनवरी, 2005 को अपीलकर्ता कंपनी को एक परिपत्र जारी करते हुए उसे यह निर्देश दिया कि वह आगामी आदेश तक किसी भी व्यक्ति से किसी भी रूप में, चाहे वह नए जमा के रूप में हो या पूर्व विद्यमान जमाओं के नवीनीकरण के रूप में अथवा अन्य किसी प्रकार से, जमा स्वीकार नहीं करेगी। इसके अतिरिक्त, अपीलकर्ता कंपनी को यह भी निर्देशित किया गया कि वह भारतीय रिज़र्व बैंक की पूर्व अनुमति के बिना अपनी संपत्तियों या परिसंपत्तियों का विक्रय, अंतरण, भार सृजन अथवा बंधक न बनाए और न ही किसी प्रकार से उनके साथ व्यवहार करे। उक्त सूचना-पत्र का प्रकाशन दिनांक 20 जनवरी, 2005 को 'इंडियन एक्सप्रेस' में किया गया।

तत्पश्चात अपीलकर्ता कंपनी को अपनी लाभप्रदता में गिरावट के कारण अपने

कार्य संचालन में कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इन समस्याओं से उबरने के उद्देश्य से अपीलकर्ता कंपनी ने अपने लेनदारों, अर्थात् जमाकर्ताओं एवं बांड धारकों के साथ समझौता योजना प्रस्तावित की, जिसे अपीलकर्ता कंपनी के निदेशक मंडल द्वारा अनुमोदित किया गया। उक्त समझौता योजना को बांड धारकों तथा जमाकर्ताओं के बहुमत द्वारा भी स्वीकृति प्रदान की गई। इसके पश्चात कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 391(2) के अंतर्गत उक्त समझौता योजना के अनुमोदन हेतु उच्च न्यायालय के समक्ष याचिका प्रस्तुत की गई। उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा उक्त योजना को अनुमोदित कर दिया गया।

अपील में, खंड पीठ ने यह अभिधारित किया कि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 45क्यू में निहित "इसके बावजूद प्रभावी उपबंध" के प्रभाव से उक्त अधिनियम का अध्याय IIIबी, कंपनी अधिनियम की धाराओं 391 से 393 पर अधिमान्य प्रभाव रखता है, तथा यह कि किसी गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनी द्वारा प्रस्तुत समझौता अथवा व्यवस्था योजना को भी भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम के अध्याय IIIबी के प्रावधानों के अनुरूप होना आवश्यक है। खंड पीठ ने अपीलकर्ता के इस प्रतिवेदन को अस्वीकार कर दिया कि दिनांक 18 जनवरी, 2005 के पत्र का अप्रकटीकरण महत्वपूर्ण नहीं था, और यह मानते हुए कि उक्त समझौता योजना न केवल भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम के अध्याय IIIबी में निहित विशिष्ट प्रावधानों के प्रतिकूल है, बल्कि लोकनीति के भी विरुद्ध है, योजना को अनुमोदित करने से इंकार कर दिया तथा तदनुसार एकल न्यायाधीश के निर्णय को अपास्त कर दिया।

उक्त अपीलों में विचारण हेतु उत्पन्न प्रमुख प्रश्न यह था कि क्या भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम के अध्याय IIIबी में निहित प्रावधानों के दृष्टिगत ऐसी व्यवस्था अथवा समझौता योजना प्रस्तुत की जा सकती थी; तथा यदि प्रस्तुत की जा सकती थी, तो क्या भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 45क्यूए में निहित प्रावधानों का अनुपालन किए बिना उसे अनुमोदित किया जा सकता था। विचारणार्थ एक अन्य प्रश्न यह भी था कि भले ही

कंपनी अधिनियम की धाराओं 235 से 251 के अंतर्गत कोई जांच लंबित न हो, क्या अपीलकर्ता कंपनी पर यह दायित्व था कि वह भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा धारा 45 एन के अंतर्गत उसके लेखा अभिलेखों के निरीक्षण के दौरान इंगित किए गए उल्लंघनों का प्रकटीकरण करे, जिनके फलस्वरूप दिनांक 18 जनवरी, 2005 का सूचना-पत्र जारी किया गया था।

अपीलों को निरस्त करते हुए, न्यायालय ने यह अभिनिर्णीत किया कि—

1. यह नहीं कहा जा सकता कि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 45 क्यूए, कंपनी अधिनियम की धाराओं 391 से 394 के अंतर्गत प्रस्तावित किसी योजना के लिए अवरोधक नहीं है। कंपनी अधिनियम की धारा 391 के अंतर्गत किसी योजना के अनुमोदन के समय कंपनी न्यायालय मात्र औपचारिक स्वीकृति प्रदान करने वाला प्राधिकरण के रूप में कार्य नहीं करता। कंपनी न्यायालय को यह संतुष्ट होना आवश्यक है कि संबंधित लेनदारों की बैठकें विधिवत् आयोजित की गई हैं। उसे यह भी संतुष्ट होना होता है कि उक्त बैठकों में लेनदारों अथवा किसी वर्ग के सदस्यों को ऐसा प्रासंगिक सामग्री उपलब्ध कराई गई है जिससे वे यह सूचित निर्णय ले सकें कि प्रस्तावित योजना न्यायसंगत एवं निष्पक्ष है या नहीं। न्यायालय को यह निष्कर्ष भी निकालना आवश्यक है कि प्रस्तावित समझौता अथवा व्यवस्था योजना किसी विधि के प्रावधान का उल्लंघन नहीं करती है तथा लोकनीति के प्रतिकूल नहीं है। अतिरिक्त रूप से, न्यायालय को यह भी संतुष्ट होना आवश्यक है कि सदस्यों अथवा सदस्यों के किसी वर्ग या लेनदारों का बहुमत सद्भावना से कार्य कर रहा है तथा उसने अल्पसंख्यक को किसी प्रकार से सहमति देने हेतु बाध्य नहीं किया है। सर्वोपरी, न्यायालय को यह भी संतुष्ट होना चाहिए कि उक्त योजना एक विवेकशील व्यवसायी व्यक्ति के दृष्टिकोण से, जो वाणिज्यिक निर्णय लेता है, न्यायसंगत एवं युक्तिसंगत है तथा उन वर्गों के लिए लाभकारी है जिनका वह प्रतिनिधित्व करता है। यह सत्य है कि योजना के अनुमोदन के समय कंपनी न्यायालय को *सुपर-लेखापरीक्षक* के रूप में कार्य करने की अपेक्षा नहीं है।

निःसंदेह, अनुमोदन के प्रस्ताव पर विचार करते समय कंपनी न्यायाधीश को योजना का परीक्षण अत्यधिक *दोषान्वेषी आलोचक, सूक्ष्म विभाजन करने वाले विशेषज्ञ, अत्यंत सावधान लेखाकार अथवा अतिशय सूक्ष्मता बरतने वाले विद्वान अधिवक्ता* के रूप में करने की आवश्यकता नहीं है। तथापि, उसी समय न्यायालय केवल इस कारण से कि उक्त योजना को इस उद्देश्य से आयोजित बैठक में अपेक्षित बहुमत द्वारा स्वीकृति प्राप्त हो गई है, सतही रूप से अपनी स्वीकृति प्रदान करने के लिए बाध्य नहीं है। न्यायालय का यह दायित्व है कि वह यह सुनिश्चित करे कि सभी विधिक आवश्यकताओं का अनुपालन किया गया है। साथ ही न्यायालय को यह भी सुनिश्चित करना होगा कि व्यवस्था की योजना केवल प्रत्यक्ष रूप से दर्शाए गए कारणों के अतिरिक्त किसी अन्य उद्देश्य को छिपाने का आच्छादन न हो। यदि उपर्युक्त किसी भी आवश्यकताओं में योजना में कमी पाई जाती है, तो न्यायालय इस योजना के अंतर्निहित प्रत्यक्ष कॉर्पोरेट उद्देश्य के आवरण को भेद सकता है तथा उसका न्यायसंगत परीक्षण कर सकता है। (कंडिका 43)[974-डी-एच; 975-ए-ई]

मीहीर एच. मफतलाल बनाम मफतलाल इंडस्ट्रीज लिमिटेड, **(1997) 1 एससीसी 579 : 1996 (6) अनुपूरक एससीआर 1 तथा** *यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया के निर्दिष्ट उपक्रम के प्रशासक एवं अन्य बनाम गरवारे पॉलिएस्टर लिमिटेड*, **(2005) 10 एससीसी 682 : 2005 (1) अनुपूरक एससीआर 192 — अवलंबित।**

धूलाभाई आदि बनाम मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य, **एआईआर 1969 एससी 78 : 1968 एससीआर 662;** *जेआईके इंडस्ट्रीज लिमिटेड एवं अन्य बनाम अमरलाल वी. जुमानी एवं अन्य,* **(2012) 3 एससीसी 255 : 2012 (3) एससीआर 114;** *ए.जी. वर्दराजुलु एवं अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य एवं अन्य,* **(1998) 4 एससीसी 231 : 1998 (2) एससीआर 390;** *भारती मोबिनेट लिमिटेड, भारती टेलिनेट लिमिटेड तथा भारती सेल्युलर लिमिटेड बनाम डीएसएस एंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड,* **111 (2004) डीएलटी 554;** *इन रे: एचसीएल इन्फोसिस्टम्स लिमिटेड, एचसीएल इन्फिनेट लिमिटेड तथा एचसीएल टेक्नोलॉजीज लिमिटेड,*

(2004) 121 कंपनी केसेज़ 861 (दिल्ली); *टाटा मोटर्स लिमिटेड बनाम फार्मास्यूटिकल प्रोडक्ट्स ऑफ इंडिया लिमिटेड एवं अन्य,* **(2008) 7 एससीसी 619 : 2008 (9) एससीआर 267 — संदर्भित।**

चार्ल्सवर्थ्स कंपनी लॉ, **18 वां संस्करण — संदर्भित।**

2.1 भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम का अध्याय III बी, भारतीय रिज़र्व बैंक (संशोधन) अध्यादेश, 1997 द्वारा समाविष्ट किया गया, जिसे तत्पश्चात भारतीय रिज़र्व बैंक (संशोधन) अधिनियम, 1997 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया। उद्देश्य एवं कारणों के विवरण से यह पूर्णतः स्पष्ट होता है कि संशोधन से पूर्व, गैर-निगमित संस्थाएं वैधानिक प्रतिबंधों से बचने के लिए विभिन्न साझेदारी फर्मों का गठन करती थीं, जैसे ही कोई फर्म 250 जमाकर्ताओं के स्तर तक पहुँचती थी। यह भी पुनः स्पष्ट किया गया कि अनेक गैर-निगमित संस्थाएं विभिन्न माध्यमों से आक्रामक रूप से विज्ञापन कर रही थीं तथा उच्च ब्याज दरों एवं अन्य प्रलोभनों की पेशकश कर जनता से जमा आमंत्रित कर रही थीं। संशोधन अधिनियम द्वारा गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों की व्यवहार्यता सुनिश्चित करने के उद्देश्य से अनेक सुरक्षा उपाय प्रदान किए गए हैं। इनमें भारतीय रिज़र्व बैंक के साथ एनबीएफसी का अनिवार्य पंजीकरण, निधियों की न्यूनतम आवश्यकता का निर्धारण, आरक्षित निधियों का सृजन तथा प्रत्येक वर्ष लाभ के एक निश्चित प्रतिशत का उस निधि में अंतरण, तथा तरलता संबंधी आवश्यकताओं का विनिर्देशन सम्मिलित है। भारतीय रिज़र्व बैंक को यह शक्तियां भी प्रदान की गई हैं कि वह इन कंपनियों के सुदृढ़ एवं स्वस्थ संचालन तथा उनकी परिसंपत्तियों की गुणवत्ता सुनिश्चित करने हेतु दिशानिर्देश जारी कर सके। भारतीय रिज़र्व बैंक को यह भी अधिकार प्रदान किया गया है कि वह गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के लेखापरीक्षकों को निर्देश दे सके, विशेष लेखापरीक्षण कराने का आदेश दे सके, एनबीएफसी द्वारा जमा स्वीकार करने पर प्रतिबंध लगा सके तथा उनके परिसमापन के लिए आवेदन प्रस्तुत कर सके। यह विशेष रूप से उल्लेखित किया गया है कि पूर्व में जमाकर्ताओं के पास अपनी शिकायतों के निवारण

हेतु केवल न्यायालय का सहारा लेने का ही उपाय उपलब्ध था। तथापि, संशोधन के पश्चात कंपनी विधि बोर्ड को यह शक्तियां प्रदान की गई हैं कि वह चूक करने वाली गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों को जमाओं तथा उस पर देय ब्याज के पुनर्भुगतान का निर्देश दे सके, ताकि जमाकर्ताओं के हितों की रक्षा की जा सके। असमाविष्ट निकायों को व्यक्तिगत उपयोग के अतिरिक्त किसी अन्य उद्देश्य हेतु जमा स्वीकार करने से पूर्णतः प्रतिबंधित किया गया है। उन्हें नियामक ढांचे के अंतर्गत स्वयं को समाविष्ट करने के पश्चात ही जमा स्वीकार करना जारी रखने की अनुमति प्रदान की गई है। ऐसे असमाविष्ट निकायों को किसी भी रूप में किसी प्रकार का विज्ञापन जारी करने से भी स्पष्ट रूप से प्रतिबंधित किया गया है। (कंडिका 45) [976-ए-एच]

2.2 उपरोक्त उद्देश्यों एवं कारणों को दृष्टिगत रखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम का अध्याय IIIबी एक स्व-निहित संहिता है। अपीलकर्ताओं के इस प्रतिवेदन को स्वीकार करना संभव नहीं है कि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम तथा कंपनी अधिनियम पृथक एवं भिन्न क्षेत्रों में संचालित होते हैं। यह भी नहीं कहा जा सकता कि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम में निहित प्रावधान, केवल नियामक प्रकृति के होने के कारण, कंपनी अधिनियम के अंतर्गत अनुमोदन हेतु प्रस्तुत योजनाओं के मामलों में लागू नहीं होंगे। (कंडिका 46) [977-सी, डी]

हरिदास एक्सपोर्ट्स बनाम ऑल इंडिया फ्लोट ग्लास मैन्युफैक्चरर्स एसोसिएशन एवं अन्य, (2002) 6 एससीसी 600 : 2002 (1) अनुपूरक एससीआर 229 — अनुप्रयोज्य ठहराया गया।

3.1 यह नहीं कहा जा सकता कि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 45क्यूए में निहित "इसके बावजूद प्रभावी उपबंध" का कंपनी अधिनियम की धाराओं 391 से 394 में निहित प्रावधानों पर अधिमान्य प्रभाव नहीं होगा; तथा यह भी नहीं कहा जा सकता कि यदि धारा 45क्यूए को अधिमान्य प्रभाव प्रदान किया जाए तो गैर-बैंकिंग वित्तीय

कंपनियों के संदर्भ में धारा 391 के प्रावधान निष्प्रभावी हो जाएंगे। इसी प्रकार यह कथन भी स्वीकार्य नहीं है कि धारा 45ए में निहित "इसके बावजूद प्रभावी उपबंध" को सीमित प्रयोजन तक ही लागू किया जाना चाहिए। भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 45क्यू में निहित "इसके बावजूद प्रभावी उपबंध" की प्रयोज्यता के क्षेत्र को सीमित करने का कोई औचित्य नहीं है। यह स्पष्ट एवं निर्विवाद शब्दों में विनिर्दिष्ट करता है कि अध्याय IIIबी के प्रावधान *किसी भी अन्य विधि में निहित किसी असंगत प्रावधान के होते हुए भी* प्रभावी रहेंगे। *यह अधिमान्य प्रभाव केवल वर्तमान में प्रवृत्त किसी अन्य विधि तक ही सीमित नहीं है, बल्कि ऐसे किसी साधन अथवा प्रलेख पर भी लागू होता है, जो ऐसी विधि के प्रभाव के कारण अस्तित्व में है।* ऐसे स्पष्ट अधिमान्य प्रभाव प्रदान करने के कारण संशोधन अधिनियम में वर्णित उद्देश्यों एवं कारणों से परिलक्षित होते हैं। *समाज के निर्धन वर्गों के शोषण की व्यापकता, जिसके परिणामस्वरूप असंख्य परिवारों का पूर्ण विनाश हो रहा था, ही गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों को कठोर नियंत्रण के अधीन लाने का मूल प्रेरक तत्व था।* अतः भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम का अध्याय IIIबी अपने आप में एक पूर्ण संहिता है। कंपनी अधिनियम एक पूर्ववर्ती अधिनियम है, क्योंकि इसका निर्माण वर्ष 1956 में हुआ था, जबकि अध्याय IIIबी को भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम (1963 का अधिनियम संख्या 55) में वर्ष 1964 से प्रभावी किया गया। धारा 45क्यूए को अधिनियम संख्या 23, 1997 द्वारा दिनांक 9 जनवरी, 1997 से समाविष्ट किया गया। अतः भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम के प्रावधान, एक परवर्ती अधिनियम होने के कारण, कंपनी अधिनियम पर अधिमान्य प्रभाव रखेंगे। यह विधि का स्थापित सिद्धांत है कि परवर्ती अधिनियम, पूर्ववर्ती अधिनियम को अधिरोहित करता है। (कंडिका 47) [977-जी-एच; 978-ए-जी]

3.2 भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम के अध्याय IIIबी को धारा 45 के समावेशन द्वारा इस स्पष्ट अभिप्राय के साथ अन्य सभी विधियों, जिनमें कंपनी अधिनियम भी सम्मिलित है, पर अधिमान्य प्रभाव प्रदान किया गया है, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके

कि किसी गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनी के मामले में कंपनी अधिनियम की धारा 391 के अंतर्गत कोई भी योजना तब तक विचारणीय न हो जब तक कि वह भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 45 क्यूए के प्रावधानों के अनुरूप न हो। (कंडिका 48) [979-एफ-जी]

अस्विनी कुमार घोष एवं अन्य बनाम अरविंद घोष एवं अन्य, **एआईआर 1952 एससी 369 : 1953 एससीआर 1;** *माधव राव जीवाजी राव सिंधिया बनाम भारत संघ एवं अन्य,* **(1971) 1 एससीसी 85 : 1971 (3) एससीआर 9;** *आईसीआईसीआई बैंक लिमिटेड बनाम सिडको लेदर्स लिमिटेड एवं अन्य,* **(2006) 10 एससीसी 452 : 2006 (1) अनुपूरक एससीआर 528;** *आर.एस. रघुनाथ बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य,* **(1992) 1 एससीसी 335 : 1991 (1) अनुपूरक एससीआर 387; तथा** *जेआईके इंडस्ट्रीज लिमिटेड एवं अन्य बनाम अमरलाल वी. जुमानी एवं अन्य,* **(2012) 3 एससीसी 25 — संदर्भित।**

4. विवादित समझौता योजना केवल इस उद्देश्य से प्रस्तुत की गई है कि लघु *जमाकर्ताओं को पुनर्भुगतान से बचा जा सके,* क्योंकि इसमें यह परिकल्पना की गई है कि जमा की शर्तों एवं निबंधनों के अनुसार राशि का पुनर्भुगतान करने के स्थान पर, ऐसी राशि को 6% ब्याज सहित परिवर्तनीय डिबेंचर के रूप में माना जाएगा, जिसे एक वर्ष की अवधि के भीतर इक्विटी शेयरों में परिवर्तित कर दिया जाएगा। ऐसा प्रावधान स्पष्टतः भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 45 क्यूए(1) में निहित अनिवार्य आवश्यकताओं के प्रतिकूल है, जिसमें यह अपेक्षित है कि "गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनी द्वारा स्वीकृत प्रत्येक जमा, जब तक उसका नवीनीकरण न किया गया हो, उस जमा की शर्तों एवं निबंधनों के अनुसार पुनर्भुगतान किया जाएगा।"अपीलकर्ताओं द्वारा किया गया यह कौशलपूर्ण प्रयास वस्तुतः उस संशोधन के समावेशन को उचित ठहराता है, *जिसे स्पष्टतः इस उद्देश्य से अधिनियमित किया गया है कि जमाकर्ताओं के हितों की रक्षा की जा सके तथा ऐसे असहाय एवं निर्धन जमाकर्ताओं का, अपीलकर्ता जैसी गैर-बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं द्वारा, शोषण रोका जा सके।* **इसी कारण भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम का अध्याय IIIबी स्पष्ट रूप से उपबंधित करता है कि उसमें निहित**

प्रावधान, उनके साथ असंगत अन्य सभी विधियों पर अधिमान्य प्रभाव रखेंगे। यह अधिमान्य प्रभाव कंपनी अधिनियम की धाराओं 391 से 394 पर भी समान रूप से लागू होगा। (कंडिका 50) [980-ई-एच; 981-ए, बी]

5. वर्तमान वाद में, उक्त योजना भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 45 क्यू के प्रतिकूल है तथा इसे उच्च न्यायालय द्वारा अनुमोदित न किया जाना विधिसंगत है। इसके अतिरिक्त, यह योजना *सद्भावना* के अभाव से ग्रस्त पाई गई है तथा *लोकनीति* के भी प्रतिकूल है। यह योजना भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 45 क्यूए(1) के अधिदेश से बचने के अप्रत्यक्ष उद्देश्य से प्रस्तावित की गई है। (कंडिका 54) [983-एफ-जी]

जे.के. (बॉम्बे) प्राइवेट लिमिटेड बनाम न्यू कैसर-ए-हिंद स्पिनिंग एंड वीविंग कंपनी लिमिटेड एवं अन्य, (1969) 2 एससीआर 866 : एआईआर 1970 एससी 1041 — संदर्भित।

6. अपीलकर्ता का यह प्रतिवेदन कि व्यवस्था की योजना को, भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम के अध्याय III बी, विशेषतः धारा 45 क्यूए(1) के प्रावधानों के अनुपालन के अभाव के बावजूद, अनुमोदित किया जा सकता है, अस्वीकार किया जाता है। अपीलकर्ताओं के पास यह अवसर उपलब्ध था कि वे धारा 45 क्यूए(1) के अंतर्गत कंपनी न्यायालय के समक्ष भुगतान करने के लिए अतिरिक्त समय प्राप्त करने हेतु आवेदन प्रस्तुत करें। प्रतीत होता है कि ऐसा कोई आवेदन प्रस्तुत नहीं किया गया और परिणामस्वरूप धारा 45 क्यूए(1) का पूर्ण उल्लंघन हुआ है। इससे यह अपरिहार्य निष्कर्ष निकलता है कि व्यवस्था की उक्त योजना को अनुमोदित नहीं किया जा सकता था। (कंडिका 56) [984-सी-ई]

हिंदुस्तान लीवर एम्प्लॉइज यूनियन बनाम हिंदुस्तान लीवर लिमिटेड एवं अन्य, 1995 अनुपूरक (1) एससीसी 499 : 1994 (4) अनुपूरक एससीआर 723 — भिन्न ठहराया गया।

7. उच्च न्यायालय ने विधिवत् यह निष्कर्ष निकाला है कि भले ही कंपनी

अधिनियम की धाराओं 235 से 251 के अंतर्गत कोई जांच लंबित न हो, तथापि कंपनी पर यह दायित्व था कि वह भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा धारा 45एन के अंतर्गत उसके लेखा अभिलेखों के निरीक्षण के दौरान इंगित किए गए उल्लंघनों का प्रकटीकरण करे, जिनके परिणामस्वरूप दिनांक 18 जनवरी, 2005 का सूचना-पत्र जारी किया गया। यह तथ्य स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि व्यवस्था की योजना प्रस्तावित करने में कंपनी की सद्भावना का अभाव था। दिनांक 18 जनवरी, 2005 के पत्र से परिलक्षित भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा की गई तथा प्रारंभ की गई कार्यवाही का अप्रकटीकरण, कंपनी अधिनियम की धारा 391(1) सहपठित धारा 393(1) के अंतर्गत प्रकटीकरण किए जाने वाले महत्वपूर्ण तथ्यों के अप्रकटीकरण के समान है। व्यवस्था की योजना की निष्पक्षता एवं सद्भावना का परीक्षण करते समय कंपनी न्यायालय मात्र औपचारिक स्वीकृति प्रदान करने वाला प्राधिकरण के रूप में कार्य नहीं करता। वह ऐसे महत्वपूर्ण तथ्यों के स्पष्ट अप्रकटीकरण की उपेक्षा नहीं कर सकता, जिनका इस निर्णय पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ सकता है कि योजना को अनुमोदित किया जाना है अथवा नहीं। उच्च न्यायालय द्वारा अपीलकर्ता के इस प्रतिवेदन को अस्वीकार करते हुए कि दिनांक 18 जनवरी, 2005 के पत्र का अप्रकटीकरण महत्वपूर्ण नहीं था, कोई क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटि नहीं की गई है। (कंडिका 58) [986-डी-एच; 987-ए]

नज़ीर संदर्भ:

(1969) 2 एससीआर 866	संदर्भित	कंडिका 20, 53
2005 (1) अनुपूरक एससीआर 192	अवलंबित	कंडिका 20, 53
2002 (1) अनुपूरक एससीआर 229	अनुप्रयोज्य ठहराया गया	कंडिका 22, 46
2006 (1) अनुपूरक एससीआर 528	संदर्भित	कंडिका 22, 49
1953 एससीआर 1	संदर्भित	कंडिका 22, 49
1971 (3) एससीआर 9	संदर्भित	कंडिका 22, 49
1968 एससीआर 662	संदर्भित	कंडिका 24

2012 (3) एससीआर 114	**संदर्भित**	**कंडिका 25, 53**
1991 (1) अनुपूरक एससीआर 387	**संदर्भित**	**कंडिका 25, 49**
1998 (2) एससीआर 390	**संदर्भित**	**कंडिका 25, 49**
111 (2004) डीएलटी 554	**संदर्भित**	**कंडिका 29**
1994 (4) अनुपूरक एससीआर 723	**भिन्न ठहराया गया**	**कंडिका 30, 57**
(2004) 121 कंपनी केसेज़ 861 (दिल्ली)	**संदर्भित**	**कंडिका 30**
2008 (9) एससीआर 267	**संदर्भित**	**कंडिका 33, 47**
1996 (6) अनुपूरक एससीआर 1	**अवलंबित**	**कंडिका 36, 43**

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार : 2013 की दीवानी अपील सं. 5505-5508

मद्रास के न्यायिक उच्च न्यायालय द्वारा ओ.एस.ए. सं. 308, 309 एवं 312, वर्ष 2006 तथा ओ.एस.ए. सं. 91, वर्ष 2007 में पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 30.04.2008 के विरुद्ध।

अरविंद दातार, वी. प्रकाश, इकबाल छागला, पराग पी. त्रिपाठी, श्याम दिवान, इमरान शर्मा, नकुल मोहता, महेश अग्रवाल, ऋषि अग्रवाला, ई.सी. अग्रवाला, अभिनव अग्रवाला, मंजू जरिया, एस.आर. सेतिया, एन. गणपति, नवल अग्रवाल, रमेश बाबू एम.आर., स्वाति सेतिया, मनीष नायर, कुनाल, कृष्ण देव, सेंथिल जगदीशन, रोमी चाको, सी.के. ससी, अभय कुमार — उपस्थित पक्षकारों की ओर से।

न्यायालय का निर्णय **माननीय न्यायमूर्ति श्री सुरिंदर सिंह निज्जर** द्वारा प्रस्तुत किया गया।

1. अनुमति प्रदान की गई।

2. श्री बी. रमन्ना कुमार द्वारा स्वर्गीय श्री एन. मणि के स्थान पर प्रतिस्थापन हेतु दायर अंतवर्ती आवेदन अनुमोदित किया जाता है।

3. ये अपीलें, जो 2008 की विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) सं. 12737-

12740 से उद्भूत हैं, मद्रास के न्यायिक उच्च न्यायालय की खंड पीठ द्वारा पारित सामान्य आदेश एवं निर्णय दिनांक 30 अप्रैल, 2008 के विरुद्ध निर्देशित हैं। उपर्युक्त आदेश के माध्यम से, कंपनी याचिका सं. 160, वर्ष 2005 में माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 19 अगस्त, 2006 को पारित आदेश/निर्णय को अपास्त कर दिया गया।

4. कंपनी याचिका सं. 160, वर्ष 2005, वर्तमान अपीलकर्ता कंपनी द्वारा कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 391 (जिसे आगे "कंपनी अधिनियम" कहा गया है) के अंतर्गत, दिनांक 10 अगस्त, 2005 की व्यवस्था/समझौता योजना के अनुमोदन हेतु दायर की गई थी। उक्त समझौता वर्तमान अपीलकर्ता कंपनी एवं उसके लेनदारों के वर्ग, अर्थात् उसके जमाकर्ताओं तथा बांड धारकों के मध्य संपन्न हुआ था। माननीय एकल न्यायाधीश ने, दिनांक 19 अगस्त, 2006 के आदेश द्वारा, कुछ शर्तों सहित उक्त योजना को अनुमोदित किया। इस आदेश को उच्च न्यायालय में चार मूल अधिकारिता अपीलों के माध्यम से चुनौती दी गई, जिन्हें खंड पीठ द्वारा दिनांक 30 अप्रैल, 2008 के आदेश से स्वीकृत कर लिया गया, जिसे वर्तमान में इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई है।

<u>**तथ्यों का सार:**</u>

5. वर्तमान अपीलों के दायर किए जाने का कारण बनने वाले प्रासंगिक तथ्य, जैसा कि पक्षकारों द्वारा वर्णित किए गए हैं, निम्नानुसार हैं:

6. वर्तमान अपीलकर्ता कंपनी का निगमण वर्ष 1983 में कंपनी अधिनियम के अंतर्गत एक गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनी (जिसे आगे "एनबीएफसी" कहा गया है) के रूप में किया गया था तथा यह अन्य बातों के *साथ-साथ* किराया-क्रय व्यवस्था एवं पट्टा के व्यवसाय में संलग्न थी। वर्षों के दौरान अपीलकर्ता कंपनी एक अग्रणी वित्तीय कंपनी के रूप में स्थापित हो गई। इसकी 32 शाखाएं हैं तथा इसमें सैकड़ों कर्मचारी कार्यरत हैं। कंपनी के शेयर भारत के दो स्टॉक एक्सचेंजों में सूचीबद्ध हैं। इसके 20,000 शेयरधारक हैं। वर्ष 1995-1996 तक अपीलकर्ता कंपनी एक लाभ अर्जित करने वाली कंपनी थी तथा अपने शेयरधारकों

को निरंतर लाभांश घोषित करती रही।

7. यह कि भारतीय रिज़र्व बैंक (जिसे आगे "आरबीआई" अथवा/और "उत्तरदाता सं. 1" कहा गया है) ने वर्ष 1997 से 2003 के दौरान गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों की विभिन्न गतिविधियों को विनियमित करने हेतु अनेक परिपत्र जारी किए। आरबीआई द्वारा इन कंपनियों पर कुछ शर्तें भी आरोपित की गईं। जिन कंपनियों ने उक्त शर्तों का अनुपालन नहीं किया, उन्हें निवेशकों से जमा स्वीकार करना बंद करने तथा स्वीकृत जमाओं का तत्काल पुनर्भुगतान करने का निर्देश दिया गया।

8. भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 (जिसे आगे "1934 का अधिनियम" कहा गया है) की धारा 45एन के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, भारतीय रिज़र्व बैंक ने वर्ष 2005 में अपीलकर्ता कंपनी के लेखा अभिलेखों का निरीक्षण किया। भारतीय रिज़र्व बैंक के निरीक्षण प्रतिवेदन में 1934 के अधिनियम के प्रावधानों के निम्नलिखित उल्लंघनों का प्रकटीकरण हुआ:

(i) दिनांक 31 मार्च, 2004 को वर्तमान अपीलकर्ता कंपनी का शुद्ध स्वामित्व निधि (एनओएफ) ऋणात्मक (-) रुपये 10666.06 लाख था, जो कि प्रतिवेदित शुद्ध स्वामित्व निधि रुपये 2194.00 लाख से अधिक था;

(ii) दिनांक 31 मार्च, 2004 को अपीलकर्ता कंपनी का कुछ कंपनियों के प्रति ऋण जोखिम, दिनांक 30 सितम्बर, 2003 को प्रतिवेदित उसके स्वामित्व निधि रुपये 2877.00 लाख के 15% से अधिक पाया गया। इस प्रकार, इसने गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के विवेकपूर्ण मानदंड (भारतीय रिज़र्व बैंक) निर्देश, 1998 (जिसे आगे "विवेकपूर्ण मानदंड निर्देश" कहा गया है) के कंडिका 12 के प्रावधानों का उल्लंघन किया।

(iii) अपीलकर्ता कंपनी ने भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा निर्धारित परिसंपत्ति

वर्गीकरण मानकों के अनुसार अपनी परिसंपत्तियों का वर्गीकरण नहीं किया और इस प्रकार विवेकपूर्ण मानदंड निर्देश के कंडिका 7 के प्रावधानों का उल्लंघन किया।

(iv) अपीलकर्ता कंपनी की सकल गैर-निष्पादित परिसंपत्तियां, जो रुपये 15603.16 लाख आंकी गई थीं, अत्यंत उच्च स्तर पर थीं और यह अपीलकर्ता कंपनी के कुल ऋण जोखिम का 69.31% भाग बनाती थीं।

(v) अपीलकर्ता कंपनी द्वारा अपनी गैर-निष्पादित परिसंपत्तियों के संबंध में पर्याप्त प्रावधान नहीं किया गया पाया गया। परिणामस्वरूप रुपये 12575.33 लाख की सीमा तक प्रावधान में कमी रही। अपीलकर्ता की इस त्रुटि से विवेकपूर्ण मानदंड निर्देश के कंडिका 8 के प्रावधानों का उल्लंघन हुआ।

(vi) अपीलकर्ता कंपनी को विवेकपूर्ण मानदंड निर्देश के कंडिका 10 के प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए भी पाया गया, क्योंकि अपीलकर्ता कंपनी का शुद्ध स्वामित्व निधि (एनओएफ) ऋणात्मक था तथा उसने न्यूनतम पूंजी पर्याप्तता अनुपात का पालन नहीं किया था।

9. तत्पश्चात दिनांक 20 जनवरी, 2005 को भारतीय रिज़र्व बैंक ने, भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 की धारा 45एमबी(1) के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, अपीलकर्ता कंपनी को एक परिपत्र जारी किया, जिसके द्वारा उसे यह निर्देश दिया गया कि वह आगामी आदेश तक *किसी भी व्यक्ति से किसी भी रूप में, चाहे वह नए जमा के रूप में हो अथवा विद्यमान जमाओं के नवीनीकरण के रूप में या अन्य किसी प्रकार से, जमा स्वीकार नहीं करेगी*। इसके अतिरिक्त, अपीलकर्ता कंपनी को यह भी निर्देशित किया गया कि वह भारतीय रिज़र्व बैंक की पूर्व अनुमति के बिना अपनी संपत्तियों अथवा परिसंपत्तियों का विक्रय, अंतरण, भार सृजन या बंधक न बनाए और न ही किसी भी प्रकार से उनके साथ

व्यवहार करे। उक्त सूचना-पत्र का प्रकाशन दिनांक 20 जनवरी, 2005 के 'इंडियन एक्सप्रेस' में भी किया गया।

10. तत्पश्चात अपीलकर्ता कंपनी को अपनी लाभप्रदता में गिरावट के कारण अपने कार्य संचालन में कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इन समस्याओं से उबरने के उद्देश्य से अपीलकर्ता कंपनी ने अपने लेनदारों, अर्थात् जमाकर्ताओं एवं बांड धारकों के साथ समझौता योजना प्रस्तावित की, जिसे अपीलकर्ता कंपनी के निदेशक मंडल द्वारा दिनांक 19 मई, 2005 को अनुमोदित किया गया। उक्त योजना का प्रासंगिक अंश निम्नलिखित है:

"4 स्थिर जमा धारकों/बांड धारकों को भुगतान

4.1 कंपनी द्वारा सभी जमाकर्ताओं के देय होने पर उनकी परिपक्वता राशि रुपये 20,000/- तक का निपटान किया जाएगा।

4.2 उक्त योजना में निम्नलिखित का प्रावधान किया जाएगा।

(क) सभी जमाकर्ताओं एवं बांड धारकों को 6% प्रतिवर्ष ब्याज वहन करने वाले सुरक्षित परिवर्तनीय डिबेंचरों में परिवर्तित किया जाएगा, जिन्हें आवंटन की तिथि से एक वर्ष की अवधि पूर्ण होने से पूर्व इक्विटी शेयरों में परिवर्तित किया जाएगा, तथा कंपनी को यह विकल्प रहेगा कि वह रूपांतरण की नियत तिथि से पूर्व डिबेंचरों का मूल्य पूर्वभुगतान कर सके। रूपांतरण मूल्य का निर्धारण सेबी के दिशा-निर्देशों में निर्धारित मूल्यांकन के आधार पर किया जाएगा।

(ख) डिबेंचर उन जमाकर्ताओं/बांड धारकों को, जो वर्तमान में नियमित ब्याज भुगतान विकल्प धारण किए हुए हैं, आवधिक ब्याज भुगतान विकल्प के साथ जारी किए जाएंगे तथा जो जमाकर्ता/बांड धारक संचयी विकल्प के अंतर्गत ब्याज प्राप्त कर

रहे हैं, उनके लिए ब्याज को परिपक्वता के समय रूपांतरण हेतु डिबेंचर के मूल्य में जोड़ दिया जाएगा।

(ग) इस योजना के परिणामस्वरूप, सभी जमाकर्ता एवं बांड धारक प्रथम वर्ष में ही आईएफसीएल के अभिलेखों में सुरक्षित लेनदार बन जाएंगे। बांडों के न्यासी, योजना के पश्चात की स्थिति में डिबेंचर न्यासी होंगे तथा पूर्णतः परिवर्तनीय डिबेंचरों के प्रयोजन हेतु सभी मानदंडों के अनुपालन के लिए रुपये 125 करोड़ की प्राप्तियों, उपार्जित ब्याज, निवेश, परिसंपत्तियों तथा हायर पर उपलब्ध स्टॉक पर प्रभार सृजित करते हुए एक डिबेंचर न्यास विलेख भी निष्पादित किया जाएगा।

4.3 उक्त रूपांतरण के परिणामस्वरूप कंपनी के व्यय का स्वरूप इस प्रकार होगा कि लेनदारों द्वारा धारण किए गए जमा/बांड के प्रकार के अनुसार तिमाही आधार पर ब्याज का भुगतान किया जाएगा। कार्यकाल की समाप्ति पर डिबेंचरों का या तो विमोचन किया जाएगा अथवा उन्हें उपयुक्त निर्गम मार्ग के अनुसार इक्विटी शेयरों में परिवर्तित किया जाएगा, क्योंकि कंपनी एक सूचीबद्ध कंपनी है तथा इन परिवर्तित शेयरों के परिसमापन हेतु पर्याप्त व्यापार योग्य बाज़ार पूंजीकरण उपलब्ध है। जमाकर्ताओं/बांड धारकों को सुरक्षित परिवर्तनीय डिबेंचरों में तथा तत्पश्चात कंपनी के इक्विटी शेयरों में परिवर्तित करना उनके हितों को सुनिश्चित करेगा, क्योंकि कंपनी ने वित्तीय बीपीओ जैसे नए व्यवसाय क्षेत्रों की स्थापना की है तथा उनके विस्तार की प्रक्रिया में है।

x x x x

"4.6 यह योजना बैंकों को प्रस्तावित नहीं की गई है, क्योंकि हायर पर उपलब्ध स्टॉक, जो गिरवी/परिकल्पित किया गया है, लगभग रुपये 80 करोड़ का है, जबकि बैंकों का देय राशि रुपये 62 करोड़ है। चूँकि बैंकों के किसी भी हित पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है और न ही उनके पक्ष में आरोपित किसी परिसंपत्ति पर कोई आंच आती है, अतः यह योजना उन्हें प्रस्तुत नहीं की गई है और यह केवल जमाकर्ताओं एवं बांड धारकों के अधिकारों से संबंधित है, जिनका इस व्यवस्था एवं समझौता योजना में निपटारा किया जा रहा है। अतः बैंकों के किसी भी प्रत्यक्ष या परोक्ष हित पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है।

5. चूँकि यह योजना प्रारंभिक अवस्था में किसी नकद निर्गम का परिकल्पन नहीं करती है तथा समयावधि के दौरान जमाकर्ताओं एवं बांड धारकों को क्रमशः शेयरधारकों में परिवर्तित करने का उद्देश्य रखती है, अतः नवीन नकद पूंजी के निवेश की कोई आवश्यकता नहीं है।

6. योजना का कार्यान्वयन

6.1 यदि इस योजना को जमाकर्ताओं एवं बांड धारकों द्वारा, कंपनी द्वारा स्वीकृत किए जा सकने वाले आवश्यक संशोधनों सहित, अनुमोदित किया जाता है, तो इसे पुष्टि हेतु इस माननीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा तथा यदि इसकी पुष्टि हो जाती है, तो यह सभी जमाकर्ताओं, बांड धारकों तथा कंपनी पर बाध्यकारी हो जाएगी। 6.2 योजना के पूर्ण होने पर कंपनी द्वारा स्थिर जमा/बांड धारकों के प्रति समस्त देयताओं का निर्वहन कर दिया जाएगा।

7. योजना का प्रभाव

7.1 उपरोक्त प्रस्तावित योजना के परिप्रेक्ष्य में, सभी पक्षकार इस बात पर सहमत हैं कि:

(क) योजना की शर्तों के अनुसार जमाकर्ताओं एवं बांड धारकों की सभी देयताओं को पूर्णतः निर्वहित माना जाएगा।

(ख) जिन जमाकर्ताओं अथवा बांड धारकों को यह योजना प्रस्तावित की गई है, उनके द्वारा कोई भी दावा प्रस्तुत नहीं किया जाएगा और

(ग) आईएफसीएल से संबंधित मामलों के संबंध में आईएफसीएल की किसी भी समूह कंपनी, उनके सहयोगियों अथवा किसी अन्य व्यक्ति, प्रवर्तकों, निदेशकों, भूतपूर्व या वर्तमान के विरुद्ध कोई भी दावा प्रस्तुत नहीं किया जा सकेगा।

(घ) यदि इस योजना को इस माननीय न्यायालय द्वारा अनुमोदित एवं आदेशित किया जाता है, तो यह कंपनी तथा योजना के सभी पक्षकारों पर बाध्यकारी होगी।

11. उपरोक्त समझौता योजना कंपनी अधिनियम की धारा 391 के अंतर्गत उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई। दिनांक 1 जुलाई, 2005 को माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा, कंपनी आवेदन सं. 854 एवं 855, वर्ष 2005, जो कि कंपनी याचिका सं. 160, वर्ष 2005 में दायर थे, के अंतर्गत अपीलकर्ता कंपनी को यह अनुमति प्रदान की गई कि वह अपने जमाकर्ताओं की एक बैठक चेन्नई में दिनांक 10 अगस्त, 2005 को अपराह्न 2:30 बजे आयोजित करे, ताकि उक्त समझौता योजना पर विचार किया जा सके तथा यदि उपयुक्त समझा जाए तो उसे संशोधन सहित या बिना संशोधन के अनुमोदित किया जा सके। इसके अतिरिक्त, श्री बी. रवि, जो एक प्रैक्टिसिंग कंपनी सचिव हैं, को उक्त बैठक की अध्यक्षता करने हेतु निर्देशित किया गया। यदि किसी कारणवश श्री बी. रवि बैठक की अध्यक्षता करने में असमर्थ हों, तो अपीलकर्ता कंपनी के प्रबंध निदेशक श्री जॉर्ज कुरुविला को

उनके स्थान पर अध्यक्षता करने का निर्देश दिया गया। माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा उक्त आदेश में कुछ अन्य निर्देश भी दिए गए, ताकि उक्त बैठक के संचालन के दौरान कंपनी अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों का समुचित अनुपालन सुनिश्चित किया जा सके।

12. तथापि, दिनांक 10 अगस्त, 2005 को बैठक आयोजित किए जाने से पूर्व ही, कंपनी आवेदन सं. 1105 से 1110, वर्ष 2005, जो कि कंपनी याचिका सं. 160, वर्ष 2005 में दायर किए गए थे, उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए। उक्त कंपनी आवेदनों में अपीलकर्ता कंपनी के कुछ जमाकर्ताओं ने अन्य बातों के साथ-साथ दिनांक 1 जुलाई, 2005 के आदेश द्वारा नियुक्त अध्यक्ष के स्थान पर एक "स्वतंत्र अध्यक्ष" की नियुक्ति की प्रार्थना की। इन आवेदकों द्वारा यह भी निवेदन किया गया कि उक्त बैठक के दौरान उन्हें पुलिस संरक्षण प्रदान किया जाए।माननीय एकल न्यायाधीश ने दिनांक 5 अगस्त, 2005 के आदेश द्वारा उक्त कंपनी आवेदनों का निस्तारण करते हुए मूल रूप से नियुक्त अध्यक्ष श्री बी. रवि के संबंध में कोई परिवर्तन नहीं किया। तथापि, श्री आर. गुरुस्वामी, सेवानिवृत्त जिला न्यायाधीश, को उक्त बैठक के लिए प्रेक्षक के रूप में नियुक्त किया गया। यह व्यवस्था प्रतीत होता है कि सभी जमाकर्ताओं/बांड धारकों की निष्पक्ष एवं स्वतंत्र भागीदारी सुनिश्चित करने के उद्देश्य से की गई थी।

13. निर्धारित बैठक दिनांक 10 अगस्त, 2005 को माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 1 जुलाई, 2005 एवं 5 अगस्त, 2005 को पारित आदेशों के अनुसार आयोजित की गई। उक्त बैठक की प्रतिवेदन विभिन्न समाचार पत्रों में प्रकाशित की गई, जिसमें यह दर्शाया गया कि योजना को बांड धारकों एवं जमाकर्ताओं के बहुमत द्वारा अनुमोदित किया गया है। उक्त बैठक के संबंध में एक प्रतिवेदन, प्रेक्षक की रिपोर्ट सहित, माननीय एकल न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत किया गया। तत्पश्चात कंपनी अधिनियम की धारा 391(2) के अंतर्गत उक्त समझौता योजना के अनुमोदन हेतु उच्च न्यायालय के समक्ष एक याचिका दायर की गई। उक्त कार्यवाही में इंटीग्रेटेड फाइनेंस कंपनी डिपॉजिटर्स एसोसिएशन, जो अपीलकर्ता

कंपनी के जमाकर्ताओं का प्रतिनिधित्व करने वाला एक संगठन है, तथा अन्य कई जमाकर्ताओं ने अपनी आपत्तियां प्रस्तुत कीं और उक्त योजना की वैधता के संबंध में विभिन्न प्रतिवेदन उठाए। भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा भी अपनी आपत्तियां प्रस्तुत की गईं। साथ ही, कुछ अन्य संगठन, जो जमाकर्ताओं एवं डिबेंचर धारकों का प्रतिनिधित्व करते थे, ने भी उक्त कार्यवाही में हस्तक्षेप किया और उक्त योजना की वैधता का समर्थन किया। इसी प्रकार, अपीलकर्ता कंपनी के कर्मचारियों के एक संगठन ने भी योजना के समर्थन में हस्तक्षेप किया। यह भी उल्लेखनीय है कि अपीलकर्ता कंपनी ने कंपनी याचिका सं. 160, वर्ष 2005 के लंबित रहने के दौरान, कंपनी आवेदन सं. 1409 एवं 1410, वर्ष 2005 दायर किए, जिनमें अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रार्थना की गई कि उक्त आवेदनों में उत्तरदाता सं. 1 से 6 को अपीलकर्ता कंपनी के निदेशकों के विरुद्ध किसी भी प्रकार की दीवानी या दांडिक कार्यवाही प्रारंभ करने से प्रतिबंधित किया जाए।

14. माननीय एकल न्यायाधीश ने दिनांक 19 अगस्त, 2006 के आदेश द्वारा उक्त योजना के विरुद्ध उठाई गई सभी आपत्तियों को निरस्त करते हुए उसे अनुमोदन प्रदान किया। अनुमोदन प्रदान करते समय माननीय एकल न्यायाधीश ने यह स्पष्ट कर दिया कि उक्त योजना का अनुमोदन *"कंपनी के निदेशकों तथा उसके कार्यों के प्रभारी व्यक्तियों को कंपनी अधिनियम या किसी अन्य अधिनियम के अंतर्गत किसी भी वैधानिक उल्लंघन के लिए प्रस्तावित किसी कार्यवाही से मुक्त या संरक्षित नहीं करेगा।"*

15. उपरोक्त आदेश, जैसा कि पूर्व में उल्लिखित किया गया है, को उच्च न्यायालय की खंड पीठ के समक्ष निम्नलिखित अपीलों के माध्यम से चुनौती दी गई:

ओ.एस.ए. सं. 308, वर्ष 2006 भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा दायर की गई; ओ.एस.ए. सं. 309, वर्ष 2006 इंटीग्रेटेड फाइनेंस कंपनी डिपॉजिटर्स एसोसिएशन द्वारा दायर की गई; ओ.एस.ए. सं. 312, वर्ष 2006 मेसर्स पॉपुलर क्यूरीज़ लिमिटेड द्वारा दायर की गई; तथा ओ.एस.ए. सं. 91,

वर्ष 2007 श्रीमती एलिज़ाबेथ एंटनी द्वारा दायर की गई।

उपरोक्त अपीलों को स्वीकृत करते हुए खंड पीठ ने दिनांक 30 अप्रैल, 2008 के सामान्य निर्णय/आदेश द्वारा माननीय एकल न्यायाधीश के निर्णय को अपास्त कर दिया। उक्त निर्णय वर्तमान में हमारे समक्ष चुनौती के अधीन है।

<u>प्रतिवेदन:</u>

16. हमने पक्षकारों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है।

17. श्री अरविंद पी. दातार, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, अपीलकर्ता कंपनी की ओर से उपस्थित हुए तथा आक्षेपित आदेश की वैधता को चुनौती दी। श्री इकबाल छागला, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) सं. 12737-12740, वर्ष 2008 में अंतरिम आवेदन सं. 29-32, वर्ष 2009 में हस्तक्षेपकर्ताओं की ओर से उपस्थित हुए। श्री श्याम दिवान, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, उक्त कार्यवाही में अंतरिम आवेदन सं. 33-36, वर्ष 2009 में हस्तक्षेपकर्ताओं की ओर से उपस्थित हुए। जबकि श्री पराग पी. त्रिपाठी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, उत्तरदाता/भारतीय रिज़र्व बैंक की ओर से उपस्थित हुए तथा श्री वी. प्रकाश, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) सं. 12738, वर्ष 2008 में उत्तरदाता सं. 1/इंटीग्रेटेड फाइनेंस डिपॉजिटर्स एसोसिएशन की ओर से उपस्थित हुए।

18. श्री दातार, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, ने यह प्रतिवेदन किया कि अपीलकर्ता कंपनी की समझौता योजना को 2177 में से 1708 (79%) जमाकर्ताओं तथा 7143 में से 5628 (77.73%) बांड धारकों, जो उपस्थित होकर मतदान कर रहे थे, द्वारा अनुमोदित किया गया, जिससे यह स्पष्ट होता है कि इसे अत्यधिक बहुमत का समर्थन प्राप्त हुआ है। उनके अनुसार, अपीलकर्ता कंपनी ने उक्त योजना से संबंधित सभी वैधानिक आवश्यकताओं का अनुपालन किया है। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि यह तथ्य इस बात से परिलक्षित होता है कि न तो माननीय एकल न्यायाधीश और न ही उच्च न्यायालय की खंड पीठ ने उक्त योजना के विन्यास में किसी प्रक्रियात्मक अनियमितता को पाया। अतः श्री दातार के

अनुसार, अब केवल निम्नलिखित प्रश्न विचारणीय हैं:

(i) "क्या भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 की धारा 45क्यू में निहित 'इसके बावजूद प्रभावी उपबंध' उच्च न्यायालय को किसी गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनी के जमाकर्ताओं के लिए किसी भी योजना को अनुमोदित करने से निषिद्ध करता है?

(ii) क्या याचिकाकर्ता ने कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 391(1) के प्रावधानों के अनुसार दिनांक 18 जनवरी, 2005 के भारतीय रिज़र्व बैंक के पत्र का प्रकटीकरण माननीय कंपनी न्यायाधीश के समक्ष करने में विफलता की थी?"

19. श्री छागला के अनुसार, इस न्यायालय के विचारार्थ उत्पन्न प्रमुख प्रश्न यह है कि क्या भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 45क्यूए के परिप्रेक्ष्य में कंपनी अधिनियम की धारा 391 गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों पर लागू नहीं होती है। उन्होंने श्री दातार द्वारा प्रतिपादित द्वितीय प्रश्न का पूरक करते हुए यह भी प्रतिवेदन किया कि इस न्यायालय को यह निर्धारित करना है कि क्या दिनांक 18 जनवरी, 2005 के पत्र का अप्रकटीकरण कंपनी अधिनियम की धारा 391(2) तथा/या धारा 393 के प्रावधानों का उल्लंघन करता है। इन प्रतिवेदनों को विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री श्याम दिवान द्वारा भी पुनः प्रतिपादित किया गया।

20. श्री दातार ने आगे यह प्रतिवेदन किया कि कंपनी अधिनियम की धाराओं 391 से 394 के अंतर्गत प्रस्तावित योजना उस सामान्य नियम का अपवाद है जिसके अनुसार किसी संविदा का नवोन्मेष केवल संबंधित व्यक्तिगत पक्षकारों की सहमति से ही किया जा सकता है। आवश्यक बहुमत द्वारा पारित प्रस्ताव, जिसके द्वारा विवादित योजना को स्वीकृति दी जाती है और जिसे न्यायालय का अनुमोदन प्राप्त होता है, वह असहमति रखने वाले अल्पसंख्यक पर भी समान रूप से बाध्यकारी होता है। इस संदर्भ में विद्वान अधिवक्ता ने

जे.के. (बॉम्बे) प्राइवेट लिमिटेड बनाम न्यू कैसर-ए-हिंद स्पिनिंग एंड वीविंग कंपनी लिमिटेड एवं अन्य,(1969) 2 एससीआर 866, एआईआर 1970 एससी 1041 तथा यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया के निर्दिष्ट उपक्रम के प्रशासक एवं अन्य बनाम गरवारे पॉलिएस्टर लिमिटेड,(2005) 10 एससीसी 682 पर अवलंबन किया। श्री श्याम दिवान, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, ने कंपनी अधिनियम की धाराओं 391 से 394 के क्षेत्राधिकार का विवेचन करते हुए हमारा ध्यान नवोन्मेष के सिद्धांत की ओर आकृष्ट किया, जो संविदा के पक्षकारों को उसके नियमों एवं शर्तों का पुनर्निर्धारण अथवा पुनः सहमति करने की अनुमति देता है। उन्होंने प्रतिवेदन किया कि इस सिद्धांत को भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 62 में मान्यता प्रदान की गई है। अतिरिक्त रूप से, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अंतर्गत कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान समझौते की अनुमति प्रदान की गई है (देखें, आदेश 23, सि.प्र.सं.); तथा न्यायादेश के समायोजन द्वारा भी (आदेश 21 नियम 2, सि.प्र.सं.)। सिक औद्योगिक कंपनियां अधिनियम, 1982 की धारा 22 तथा कंपनी अधिनियम की धारा 402 में निहित प्रावधानों पर अवलंबन करते हुए, श्री दिवान ने यह प्रतिवेदन किया कि कंपनी अधिनियम का अध्याय V संविदाओं में परिवर्तन करने की एक अन्य वैधानिक विधि प्रदान करता है। उक्त अध्याय V समान स्थिति वाले सदस्यों/लेनदारों के एक विशेष वर्ग को, अपेक्षित बहुमत की उपस्थिति में, गंभीर संविदात्मक दायित्वों में भी परिवर्तन करने की अनुमति देता है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि कंपनी अधिनियम की धाराओं 391 से 394 के अंतर्गत प्रस्तावित योजना मात्र एक वाणिज्यिक समझौता नहीं है, बल्कि यह कंपनी के सभी सदस्यों एवं लेनदारों पर विधिक रूप से बाध्यकारी होती है।

21. श्री दातार, श्री छागला तथा श्री दिवान ने सर्वसम्मति से यह प्रतिवेदन किया कि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 45क्यूए, कंपनी अधिनियम की धाराओं 391 से 394 के अंतर्गत प्रस्तावित योजना के लिए कोई अवरोध नहीं है। उक्त प्रतिवेदन के समर्थन में विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ताओं द्वारा निम्नलिखित आधार प्रस्तुत किए गए:

प्रथम, भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम तथा कंपनी अधिनियम को उनके-अपने क्षेत्राधिकार में पढ़ा जाना चाहिए, क्योंकि दोनों पूर्णतः भिन्न क्षेत्रों में संचालित होते हैं। द्वितीय, भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 45क्यूए तथा कंपनी अधिनियम की धाराओं 391 से 394 को सामंजस्यपूर्ण रूप से पढ़ा जा सकता है और उक्त प्रावधानों के मध्य कोई असंगति नहीं है। तृतीय, विधायिका का अभिप्राय यह नहीं था कि गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के संबंध में कंपनी अधिनियम की धाराओं 391 से 394 के अनुप्रयोग को निष्कासित किया जाए।

22. उक्त प्रतिपादनों का विस्तार करते हुए यह प्रतिवेदन किया गया कि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम तथा कंपनी अधिनियम पूर्णतः पृथक एवं भिन्न क्षेत्रों में संचालित होते हैं। श्री छागला ने तर्क प्रस्तुत किया कि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम स्वभावतः नियामक है तथा इसे बैंकिंग कंपनियों एवं गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के संचालन को विनियमित करने के उद्देश्य से अधिनियमित किया गया है। भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम केवल कंपनी अधिनियम का पूरक है और उसका स्थानापन्न नहीं है। उक्त प्रतिवेदन के समर्थन में श्री दातार ने बेनियन, *इंटरप्रिटेशन ऑफ स्टैच्यूट्स*, धारा 288, जो "पाठीय असंगतियों" से संबंधित है, पर अवलंबन किया। इसके अतिरिक्त *हरिदास एक्सपोर्ट्स बनाम ऑल इंडिया फ्लोट ग्लास मैन्युफैक्चरर्स एसोसिएशन एवं अन्य, (2002) 6 एससीसी 600* पर भी अवलंबन किया गया। श्री दातार ने आगे यह भी इंगित किया कि कंपनी अधिनियम के अंतर्गत योजना से संबंधित विशेष प्रावधान, किसी विशेष अधिनियम पर अधिमान्य होंगे, यदि उस विशेष अधिनियम में उस विषय से संबंधित कोई प्रावधान उपलब्ध न हो। इस संदर्भ में उन्होंने *आईसीआईसीआई बैंक लिमिटेड बनाम सिडको लेदर्स लिमिटेड एवं अन्य, (2006) 10 एससीसी 452* में प्रतिपादित विधिक सिद्धांत पर अवलंबन किया। इसी संदर्भ में श्री छागला ने इस न्यायालय के निर्णयों, *अस्विनी कुमार घोष एवं अन्य बनाम*

अरविंद घोष एवं अन्य, एआईआर 1952 एससी 369 तथा *माधव राव जीवाजी राव सिंधिया बनाम भारत संघ एवं अन्य, (1971) 1 एससीसी 85* पर अवलंबन किया। आगे, श्री छागला के अनुसार, भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम अपने आप में एक पूर्ण संहिता नहीं है।

23. श्री दातार ने यह भी इंगित किया कि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम का अनुप्रयोग जमा संकलन के विनियमन, न्यूनतम शुद्ध स्वामित्व निधि, जमाओं की शर्तों आदि के संबंध में होगा, परंतु यह कंपनी अधिनियम के अंतर्गत योजनाओं के मामलों में लागू नहीं होगा, जहाँ ऐसे मामलों पर उक्त अधिनियम द्वारा कोई निषेध नहीं लगाया गया है। कंपनी अधिनियम उन परिस्थितियों में लागू होता रहेगा जहाँ कंपनी के संचालन से संबंधित विषयों का प्रश्न है, जैसे कि कंपनी की योजनाओं एवं व्यवस्थाओं से संबंधित प्रावधान।अतः यह प्रतिवेदन किया गया कि कंपनी अधिनियम की धाराओं 391 से 394 के अंतर्गत आने वाले विषयों में भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम का कोई अनुप्रयोग नहीं है, और इस कारण भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 45क्यूए, कंपनी अधिनियम की धाराओं 391 से 394 के अंतर्गत प्रस्तावित योजना के लिए कोई अवरोध नहीं है।

24. *द्वितीयतः,* यह प्रतिवेदन किया गया कि चूँकि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 45क्यूए तथा कंपनी अधिनियम की धाराओं 391 से 394 के मध्य कोई असंगति नहीं है, अतः भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम के अध्याय IIIबी में निहित "इसके बावजूद प्रभावी उपबंध" के कारण यह वर्तमान वाद में लागू नहीं होगा। श्री दिवान ने यह प्रस्तुत किया कि कंपनी अधिनियम की धाराओं 391 से 394 का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। वस्तुतः डिबेंचर धारकों के साथ ऐसी व्यवस्थाएँ, जिनमें (i) भुगतान की अवधि का विस्तार; (ii) अंकित मूल्य से कम राशि का नकद भुगतान स्वीकार करना; तथा (iii) डिबेंचरों का शेयरों में विनिमय, उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से स्वीकार किए जाते रहे हैं (देखें, *चार्ल्सवर्थ्स कंपनी लॉ, 18वाँ संस्करण, पृष्ठ 772*)। इसके विपरीत, भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम का अध्याय IIIबी गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के विनियमन से संबंधित विस्तृत

प्रावधानों का समुच्चय है। श्री छागला ने यह भी जोड़ा कि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम में वर्ष 1997 के संशोधन, जिसके द्वारा धारा 45क्यू जोड़ी गई, का उद्देश्य यह दर्शाता है कि जमाकर्ताओं को यह उपाय प्रदान किया जाए कि वे गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनी द्वारा जमा की शर्तों एवं निबंधनों के अनुसार पुनर्भुगतान न किए जाने की स्थिति में कंपनी विधि बोर्ड के समक्ष आवेदन कर सकें। तथापि, कंपनी विधि बोर्ड का क्षेत्राधिकार अनन्य नहीं है और न ही दीवानी न्यायालय अथवा कंपनी न्यायालय के क्षेत्राधिकार को अपवर्जित किया गया है। इस संदर्भ में *धूलाभाई आदि बनाम मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य,एआईआर 1969 एससी 78* में प्रतिपादित विधिक सिद्धांत पर अवलंबन किया गया।

25. अतिरिक्त रूप से, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने "इसके बावजूद प्रभावी उपबंध" (नॉन-ऑब्स्टैंटे उपबंध) की व्याख्या के संबंध में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों पर विशेष रूप से अवलंबन करते हुए यह तर्क प्रस्तुत किया कि धारा 45क्यूए न तो इस वाद के तथ्यों एवं परिस्थितियों में लागू होती है और न ही यह कंपनी अधिनियम की धाराओं 391 से 394 के अंतर्गत योजना के लिए अवरोध है। श्री दातार ने *जेआईके इंडस्ट्रीज लिमिटेड एवं अन्य बनाम अमरलाल वी. जुमानी एवं अन्य,(2012) 3 एससीसी 255* के निर्णय पर अवलंबन किया, जिसमें यह अभिधारित किया गया कि *"आधुनिक विधायन की योजना के अंतर्गत नॉन-ऑब्स्टैंटे उपबंध का प्रयोग संदर्भगत एवं सीमित प्रयोजन के लिए होता है।" इसके अतिरिक्त आर.एस. रघुनाथ बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य, (1992) 1 एससीसी 335* के निर्णय पर भी अवलंबन किया गया, जिसमें यह प्रतिपादित किया गया कि किसी नॉन-ऑब्स्टैंटे उपबंध को अधिमान्य प्रभाव प्रदान करने से पूर्व दोनों अधिनियमों के मध्य स्पष्ट असंगति होना आवश्यक है। तथापि, नॉन-ऑब्स्टैंटे उपबंध का विस्तार अनिवार्यतः उस प्रावधान के क्रियात्मक भाग के समान नहीं होता कि वह किसी अधिनियम की स्पष्ट भाषा को सीमित कर दे। यदि अधिनियम के शब्द स्पष्ट हैं और उनका साधारण एवं व्याकरणिक व्याख्या द्वारा स्पष्ट अर्थ निकाला जा सकता है, तो नॉन-ऑब्स्टैंटे उपबंध उस

व्याख्या को संकुचित कर उसके क्षेत्राधिकार को सीमित नहीं कर सकता।

यह भी प्रतिवेदन किया गया कि न्यायालय को यह निर्धारित करने का प्रयास करना चाहिए कि विधायिका ने किस सीमा तक एक प्रावधान को दूसरे प्रावधान पर अधिमान्य प्रभाव प्रदान करने का अभिप्राय रखा है। विधायिका की ऐसी मंशा का निर्धारण संबंधित धारा के अधिनियमन भाग से किया जाना चाहिए। इस संदर्भ में विद्वान अधिवक्ता ने ए.जी. वर्दराजुलु एवं अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य एवं अन्य, (1998) 4 एससीसी 231 पर अवलंबन किया।

26. श्री छागला द्वारा आगे यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम में अध्याय III बी को वर्ष 1963 के संशोधन अधिनियम द्वारा समाविष्ट किया गया था। उक्त संशोधन अधिनियम के उद्देश्य एवं कारणों के विवरण से यह स्पष्ट होता है कि इसका अभिप्राय कंपनी अधिनियम के प्रावधानों को अधिरोहित करना नहीं था। चूँकि ऐसे समावेशन के पीछे विधायिका का उद्देश्य सामान्यतः गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के कार्य संचालन का विनियमन करना तथा विशेष रूप से बहुविध साझेदारी फर्मों द्वारा सामान्य जनता से जमा स्वीकार करने पर रोक लगाना था, अतः इसकी ऐसी व्याख्या नहीं की जा सकती जिससे कंपनी अधिनियम की धाराओं 391 से 394 के अनुप्रयोग को अपवर्जित कर दिया जाए। श्री छागला के अनुसार, धारा 45क्यूए केवल सामान्य शब्दों में यह उपबंधित करती है कि प्रत्येक ऋण का पुनर्भुगतान उसकी शर्तों एवं निबंधनों के अनुसार किया जाएगा। यह प्रावधान किसी जमाकर्ता को इस बात से निषिद्ध नहीं करता कि वह बिना ब्याज के मूलधन की पूर्ण राशि स्वीकार करने पर सहमत हो या मूलधन की पूर्ण राशि से कम राशि स्वीकार करे अथवा नकद के स्थान पर वस्तु के रूप में स्वीकार करे। अन्य शब्दों में, कंपनी एवं जमाकर्ता के मध्य संपन्न संविदा के नवोन्मेष को निषिद्ध नहीं किया गया है।

27. अतिरिक्त रूप से यह प्रतिवेदन किया गया कि धारा 45क्यूए का प्रावधान, यदि पूर्णतः समान न भी हो, तो भी कंपनी अधिनियम की धारा 58ए के *समरूप विषयवस्तु*

वाला है। कंपनी अधिनियम की धारा 58ए के अंतर्गत जमाओं के संबंध में कंपनी न्यायालय के समक्ष धारा 391 के अंतर्गत योजनाएं प्रस्तुत की जाती हैं तथा उनका अनुमोदन किया जाता है। उक्त प्रतिवेदन के आधार पर श्री दातार ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि यदि उत्तरवर्ती धारा के अंतर्गत व्यवस्था की योजना निषिद्ध नहीं है, तो पूर्ववर्ती अर्थात् भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 45क्यूए के अंतर्गत भी इसे निषिद्ध नहीं माना जा सकता। इस प्रतिवेदन को श्री छागला द्वारा भी पुनः प्रतिपादित एवं विस्तारपूर्वक स्पष्ट किया गया।

28. अतिरिक्त रूप से यह प्रतिवेदन किया गया कि जहाँ-जहाँ विधायिका ने कंपनी अधिनियम की धारा 391 के अनुप्रयोग को अपवर्जित किया है, वहाँ उसने इसे स्पष्ट रूप से किया है। उदाहरणार्थ, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 38 पर अवलंबन किया, जिसमें यह उपबंधित है कि उच्च न्यायालय द्वारा बैंकिंग कंपनी के परिसमापन के मामलों में कंपनी अधिनियम की धारा 391 लागू नहीं होगी। आगे यह भी प्रतिवेदन किया गया कि विधायिका की मंशा की ऐसी व्याख्या नहीं की जानी चाहिए जिससे गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के जमाकर्ताओं के साथ, सार्वजनिक लिमिटेड कंपनियों तथा बैंकिंग कंपनियों के जमाकर्ताओं की तुलना में भेदभाव उत्पन्न हो। कंपनी अधिनियम की धारा 391 का लाभ उस स्थिति में उपलब्ध है जब कोई एनबीएफसी परिसमापन में जा रही हो, परंतु यदि आक्षेपित आदेश में की गई व्याख्या को स्वीकार कर लिया जाए, तो वही प्रावधान उस कंपनी के पुनरुद्धार के लिए उपलब्ध नहीं रहेगा। यह, उनके अनुसार, एक विसंगतिपूर्ण स्थिति उत्पन्न करेगा। उपरोक्त के आलोक में विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ताओं द्वारा सामूहिक रूप से यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 की धारा 45क्यू में निहित "इसके बावजूद प्रभावी उपबंध" उच्च न्यायालय को किसी गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनी के जमाकर्ताओं के लिए किसी भी योजना को अनुमोदित करने से निषिद्ध नहीं करता। अतः उच्च न्यायालय की खंड पीठ द्वारा माननीय एकल न्यायाधीश के आदेश को अपास्त करना एक गंभीर क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटि है।

29. अपीलकर्ता कंपनी तथा हस्तक्षेपकर्ताओं की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ताओं द्वारा प्रतिपादित द्वितीय प्रश्न यह है कि क्या भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा अपीलकर्ता को जारी दिनांक 18 जनवरी, 2005 के पत्र/सूचना-पत्र का अप्रकटीकरण, कंपनी अधिनियम की धारा 391(2) तथा/या धारा 393 के प्रावधानों का उल्लंघन है। श्री दातार ने यह प्रतिवेदन किया कि उक्त दिनांक 18 जनवरी, 2005 का पत्र भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा विभिन्न समाचार पत्रों में, जिनमें दिनांक 20 जनवरी, 2005 का *'इंडियन एक्सप्रेस'* भी सम्मिलित है, व्यापक रूप से प्रकाशित किया गया था, और इस प्रकार उक्त पत्र की विषयवस्तु सार्वजनिक क्षेत्र में उपलब्ध थी। यह भी तर्क प्रस्तुत किया गया कि जो तथ्य योजना के अनुमोदन के लिए महत्वहीन हैं, उनका प्रकटीकरण आवश्यक नहीं है। इस संदर्भ में विद्वान अधिवक्ता ने *भारती मोबिनेट लिमिटेड, भारती टेलिनेट लिमिटेड तथा भारती सेल्युलर लिमिटेड बनाम डीएसएस एंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड, 111 (2004) डीएलटी 554* पर अवलंबन किया।

30. विद्वान अधिवक्ता ने आगे यह प्रतिवेदन किया कि अन्यथा भी, कंपनी अधिनियम की धारा 391(2) के उपबंध के अंतर्गत जो प्रकटीकरण किया जाना अपेक्षित है, वह केवल उस न्यायालय के समक्ष किया जाना है जो योजना का अनुमोदन करता है, न कि उन लेनदारों अथवा शेयरधारकों के समक्ष जिनके साथ यह योजना संपन्न की जाती है। इस संदर्भ में विद्वान अधिवक्ता ने *हिंदुस्तान लीवर एम्प्लॉइज यूनियन बनाम हिंदुस्तान लीवर लिमिटेड एवं अन्य, 1995 अनुपूरक (1) एससीसी 499 तथा इन रे: एचसीएल इन्फोसिस्टम्स लिमिटेड, एचसीएल इन्फिनेट लिमिटेड एवं एचसीएल टेक्नोलॉजीज लिमिटेड, (2004) 121 कंपनी केसेज़ 861 (दिल्ली)* पर अवलंबन किया।

31. श्री चागला ने इस बात पर विशेष बल दिया कि कंपनी अधिनियम की धारा 391(2) के अंतर्गत किसी कंपनी पर यह अनिवार्य किया गया है कि वह न्यायालय के समक्ष कंपनी से संबंधित सभी महत्वपूर्ण तथ्यों का प्रकटीकरण करे, "जैसे कि कंपनी की नवीनतम वित्तीय स्थिति, कंपनी के खातों पर नवीनतम लेखा परीक्षक प्रतिवेदन, तथा धारा

235 से 251 के अंतर्गत कंपनी के संबंध में किसी भी जांच कार्यवाही की लंबितता, तथा <u>इसी प्रकार के अन्य तथ्य"</u> (इस पर बल विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिया गया)। उन्होंने यह तर्क प्रस्तुत किया कि 18 जनवरी, 2005 दिनांकित भारतीय रिज़र्व बैंक का आदेश, कंपनी अधिनियम की धारा 235 से 251 के प्रावधानों के समान नहीं है। अतः यह तर्क किया गया कि खंड पीठ द्वारा यह निष्कर्ष निकालना त्रुटिपूर्ण था कि अपीलकर्ता कंपनी को अपने लेनदारों के समक्ष भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा जारी पत्र/आदेश का प्रकटीकरण करना चाहिए था।

<u>उत्तरदाता के प्रतिवेदन</u>

32. श्री तिरपाठी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जो कि भारतीय रिज़र्व बैंक की ओर से उपस्थित हुए, यह प्रस्तुत करते हैं कि उच्च न्यायालय की खंड पीठ ने भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम के अध्याय III-बी के प्रावधानों की सही व्याख्या की है। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के संबंध में विनियामक तंत्र को सुदृढ़ करने हेतु संशोधन आवश्यक था। उक्त अध्याय III-बी ने विनियमों की एक विस्तृत योजना विकसित की है, जिसके अंतर्गत उपयुक्त परिस्थितियों में भारतीय रिज़र्व बैंक को किसी गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनी के परिसमापन की मांग करने का भी अधिकार प्राप्त है। भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 45क्यू यह उपबंध करती है कि उसका अध्याय III-बी उससे असंगत किसी अन्य विधि पर प्रभावी होगा। धारा 45क्यूए एक वैधानिक अधिकार प्रदान करती है, जिसका परित्याग कोई भी नहीं कर सकता। इस प्रावधान के अंतर्गत, गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनी द्वारा स्वीकृत प्रत्येक जमा को उसकी शर्तों और नियमों के अनुसार नवीनीकृत तथा पुनर्भुगतान किया जाना अनिवार्य है। कोई भी पश्चातवर्ती समझौता इन शर्तों को त्यागने या परिवर्तित करने की अनुमति नहीं दे सकता। धारा 45क्यूए(2) के अंतर्गत गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों को कंपनी विधि बोर्ड के समक्ष पुनर्भुगतान के लिए समय-विस्तार की मांग करने का अधिकार प्राप्त है। अध्याय III-बी में ऐसा कोई अन्य प्रावधान नहीं है जो धारा 45क्यूए

के प्रभाव को कम कर सके। श्री तिरपाठी के अनुसार, उच्च न्यायालय ने उचित रूप से यह निष्कर्ष निकाला है कि अपीलकर्ता कंपनी की विवादित योजना अध्याय III-बी के अनुरूप नहीं है और इसलिए उसे अनुमोदित नहीं किया जा सकता।

33. अपीलकर्ताओं द्वारा धारा 45 क्यूए में निहित अनन्य प्राधान्य उपबंध की व्याख्या के संबंध में प्रस्तुत प्रतिवेदनों का प्रत्युत्तर करते हुए, श्री तिरपाठी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, ने यह प्रस्तुत किया कि अध्याय III-बी में निहित प्रावधान कंपनी अधिनियम के प्रावधानों पर प्रभावी होंगे। इस संदर्भ में उन्होंने इस न्यायालय के निर्णय *टाटा मोटर्स लिमिटेड बनाम फार्मास्युटिकल प्रोडक्ट्स ऑफ इंडिया लिमिटेड एवं अन्य (2008) 7 एस.सी.सी. 619* पर अवलंबित किया।

34. श्री वी. प्रकाश, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जो कि उत्तरदाता संख्या 1, इंटीग्रेटेड फाइनेंस डिपॉजिटर्स एसोसिएशन की ओर से, विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) संख्या 12738 वर्ष 2008 में उपस्थित हुए, ने यह प्रस्तुत किया कि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 45 क्यूए(1) में निहित प्रावधान अनिवार्य हैं तथा इन्हें कमज़ोर या अल्पीकृत नहीं किया जा सकता। तथ्यात्मक परिस्थितियों का विस्तार करते हुए, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ता कंपनी ने अत्यंत आक्रामक विज्ञापन अभियान चलाया, जिसका उद्देश्य सामान्य जनसमूह को यह विश्वास दिलाना था कि उसे एमआरएफ लिमिटेड, मलयाला मनोरमा आदि जैसी अग्रणी कंपनियों का समर्थन प्राप्त है, ताकि केरल में जनता से जमा प्राप्त की जा सके। तत्पश्चात, जनसामान्य के लिए अत्यंत आश्चर्यजनक रूप से, दिनांक 18 जनवरी, 2005 का आदेश समाचार पत्रों में प्रकाशित किया गया, जिसके द्वारा अपीलकर्ता को किसी भी आगे की जमा स्वीकार करने या नवीनीकृत करने से प्रतिषिद्ध किया गया, तथापि उक्त सूचना-पत्र के पश्चात भी अपीलकर्ता द्वारा जमा स्वीकार करना जारी रखा गया। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे यह प्रस्तुत किया कि कंपनी विधि बोर्ड के समक्ष प्रस्तुत व्यवस्था योजना सद्भावनापूर्ण नहीं थी; इसमें भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा

जारी विभिन्न निर्देशों का प्रकटीकरण नहीं किया गया था, जो कि एक गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनी के रूप में अपीलकर्ता के कार्यकलापों को सीमित करते थे। उच्च न्यायालय ने उचित रूप से यह अभिधारित किया है कि अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तावित योजना सद्भावनापूर्ण नहीं है तथा वस्तुतः यह लोक नीति के प्रतिकूल है।

35. हहमने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदनों पर विचार किया है। हम यहां संक्षेप में उन निष्कर्षों का उल्लेख कर सकते हैं, जिन पर उच्च न्यायालय द्वारा पहुँचा गया है:

<u>उच्च न्यायालय के निष्कर्ष</u>

36. कंपनी अधिनियम की धारा 391 से 393 के क्षेत्राधिकार का परीक्षण करते हुए, उच्च न्यायालय ने उपर्युक्त धाराओं के विश्लेषण पर अवलंबित किया, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा मामले *मिहीर एच. मफतलाल बनाम मफतलाल इंडस्ट्रीज़ लिमिटेड, (1997) 1 एस.सी.सी. 579* में प्रतिपादित किया गया है। उक्त निर्णय में दिया गया विश्लेषण निम्नलिखित है:-

> "28-ए. 1. अनुमोदन प्रदान करने वाले न्यायालय को यह सुनिश्चित करना होता है कि ऐसी योजना के समर्थन के लिए आवश्यक समस्त वैधानिक प्रक्रिया का अनुपालन किया गया है तथा धारा 391(1)(ए) द्वारा अभिप्रेत आवश्यक बैठकों का आयोजन किया गया है।
>
> 2. कि न्यायालय के अनुमोदन हेतु प्रस्तुत की गई योजना धारा 391(2) द्वारा अपेक्षित आवश्यक बहुमत मत से समर्थित है।
>
> 3. कि संबंधित लेनदारों अथवा सदस्यों या उनके किसी वर्ग की बैठकों के समक्ष ऐसा प्रासंगिक सामग्री उपलब्ध थी, जिससे मतदाताओं को विवादित योजना के अनुमोदन हेतु सूचित निर्णय पर पहुँचने में सक्षम बनाया जा सके। तथा यह कि संबंधित मतदाताओं के वर्ग का बहुमत

निर्णय उस समस्त वर्ग के प्रति न्यायसंगत और उचित है, जिससे वह वैध रूप से उस वर्ग के असहमत सदस्यों पर भी बाध्यकारी हो सके।

4. कि धारा 393(1)(ए) द्वारा निर्दिष्ट समस्त आवश्यक सामग्री, धारा 391 उपधारा (1) के अंतर्गत अभिप्रेत संबंधित बैठकों में मतदाताओं के समक्ष प्रस्तुत की गई है।

5. कि अधिनियम की धारा 391 की उपधारा (2) के उपबंध द्वारा अभिप्रेत समस्त आवश्यक सामग्री, ऐसी योजना के अनुमोदन की मांग करने वाले संबंधित आवेदक द्वारा न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई है तथा न्यायालय इस संबंध में संतुष्ट हो जाता है।

6. कि प्रस्तावित समझौता एवं व्यवस्था योजना किसी विधि के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन करने वाली नहीं पाई जाती है तथा न ही यह लोक नीति के प्रतिकूल है। इस पहलू पर संतुष्ट होने के उद्देश्य से योजना के अधीन निहित वास्तविक उद्देश्य का निर्धारण करने हेतु, यदि आवश्यक हो, तो न्यायालय योजना के अधीन प्रत्यक्षतः प्रदर्शित निगमित उद्देश्य के आवरण को भेद सकता है तथा उसका न्यायसंगत रूप से परीक्षण कर सकता है।

7. कि कंपनी न्यायालय को यह भी स्वयं संतुष्ट करना होता है कि सदस्य अथवा सदस्यों का वर्ग या लेनदार अथवा लेनदारों का वर्ग, जैसा भी प्रकरण हो, सद्भावपूर्वक और अच्छे विश्वास में कार्य कर रहे थे तथा वे उस अल्पसंख्यक पर कोई दबाव नहीं डाल रहे थे, ताकि वे उसी वर्ग के उन सदस्यों के प्रतिकूल किसी हित को बढ़ावा न दें, जिनका वे प्रतिनिधित्व करने का दावा करते हैं।

8. कि समग्र रूप से उक्त योजना भी न्यायसंगत, उचित तथा युक्तिसंगत

पाई जाती है, उस दृष्टिकोण से कि विवेकशील व्यवसायी, जो उनके द्वारा प्रतिनिधित्व किए गए वर्ग के हित में, जिसके लिए यह योजना अभिप्रेत है, एक वाणिज्यिक निर्णय लेते हैं।

9. जब न्यायालय के अनुमोदन प्राप्त करने हेतु योजना की आवश्यकताओं के संबंध में उपर्युक्त व्यापक मानकों का अनुपालन पाया जाता है, तब न्यायालय को उस वर्ग के व्यक्तियों के बहुमत की वाणिज्यिक बुद्धिमत्ता पर अपील के रूप में बैठने का कोई अतिरिक्त क्षेत्राधिकार प्राप्त नहीं रहता, जिन्होंने पूर्ण जागरूकता के साथ योजना को अपनी स्वीकृति प्रदान की है, भले ही न्यायालय के दृष्टिकोण में कंपनी तथा उसके सदस्यों या लेनदारों, जिनके लिए यह योजना निर्मित की गई है, के लिए कोई बेहतर योजना उपलब्ध हो सकती हो। इस आधार पर न्यायालय ऐसी योजना के अनुमोदन से इंकार नहीं कर सकता, क्योंकि अन्यथा यह न्यायालय द्वारा अपने पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार के स्थान पर अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने के समान होगा।

37. उच्च न्यायालय ने सुव्यवस्थित विधिक स्थिति का संज्ञान लिया कि कंपनी अधिनियम की धारा 391 से 393 के अंतर्गत योजना का परीक्षण करते समय न तो कंपनी न्यायालय और न ही अपीलीय न्यायालय को योजना में निहित विभिन्न सुझावों के सूक्ष्म विवरणों में जाना चाहिए। उच्च न्यायालय ने यह भी स्वीकार किया कि किसी विशेष प्रस्ताव की वित्तीय विवेकशीलता का आकलन करना कंपनी न्यायालय अथवा अपीलीय न्यायालय के लिए कठिन है, क्योंकि न्यायालयों के पास व्यवस्था योजनाओं की वाणिज्यिक बुद्धिमत्ता का परीक्षण करने के लिए आवश्यक विशेषज्ञता नहीं होती, विशेषकर तब जब ऐसी योजना को बांड धारकों तथा जमाकर्ताओं के अत्यधिक बहुमत द्वारा अनुमोदित किया गया हो। न्यायालय से यह अपेक्षित नहीं है कि वह अपने विवेक को उन हितधारकों के विवेक के

स्थान पर प्रतिस्थापित करे, जिन्होंने किसी विशेष योजना के लिए अपनी सहमति प्रदान की है। उच्च न्यायालय ने यह भी अभिधारित किया कि सामान्यतः किसी भी प्रकार से योजना कंपनी न्यायालय तथा अपीलीय न्यायालय के क्षेत्राधिकार से परे होती है, सिवाय उन विरल मामलों के, जहाँ यह प्रत्यक्षतः स्पष्ट हो कि योजना इतनी अविवेकपूर्ण है कि कोई भी सामान्य बुद्धि वाला व्यक्ति उसे स्वीकार नहीं कर सकता। उच्च न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि *"वर्तमान वाद के तथ्यों में हम यह नहीं मानते कि इस योजना को इतना अत्यधिक अनुचित कहा जा सकता है कि यह न्यायालय के हस्तक्षेप को आमंत्रित करे।"* उच्च न्यायालय ने कुछ जमाकर्ताओं के इस प्रतिवेदन को भी अस्वीकार कर दिया कि योजना के अनुमोदन हेतु बैठकों का आयोजन केरल राज्य के भीतर किया जाना चाहिए था।

38. इस प्रश्न के परीक्षण के उपरांत कि क्या कंपनी को दिनांक 18 जनवरी, 2005 के आदेश से उत्पन्न तथ्यों का प्रकटीकरण करना चाहिए था, ताकि जमाकर्ताओं तथा बांड धारकों को सूचित निर्णय लेने में सक्षम बनाया जा सके, उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि कंपनी इस प्रकार के अप्रकटीकरण की दोषी है।

39. भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 45 के प्रावधानों की व्याख्या करते हुए, खंड पीठ ने यह निष्कर्ष निकाला कि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 45 क्यू में निहित अनन्य प्राधान्य उपबंध के कारण, भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम का अध्याय III-बी, कंपनी अधिनियम की धारा 391 से 393 पर प्रभावी होगा। यह अभिधारित किया गया कि धारा 45 क्यूए में निहित प्रावधान, जिसका उद्देश्य जमाकर्ताओं की सुरक्षा करना है, ऐसे किसी भी असंगत विधि पर प्रधानता रखेगा। आगे यह भी अभिधारित किया गया कि समझौता एवं व्यवस्था की योजना, भले ही किसी गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनी द्वारा प्रस्तुत की गई हो, उसे भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम के अध्याय III-बी में निहित प्रावधानों के अनुरूप होना अनिवार्य होगा। खंड पीठ ने यह भी निष्कर्ष निकाला कि उक्त योजना न केवल भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम के अध्याय III-बी में निहित विशिष्ट प्रावधानों के

प्रतिकूल है, बल्कि यह लोक नीति के भी विरुद्ध है। इन अवलोकनों के साथ, खंड पीठ ने योजना को अनुमोदित करने से इंकार कर दिया तथा कंपनी न्यायालय द्वारा पारित आदेश को अपास्त कर दिया।

40. हमारे मत में, उच्च न्यायालय के उपर्युक्त निष्कर्षों में किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। अपीलकर्ता के अनुसार भी, अपने 1983 में निगमित होने के पश्चात, अपीलकर्ता एक विशाल गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनी के रूप में विकसित हो गया था; इसके 20,000 अंशधारक थे। इसके अंश भारत के दो स्टॉक एक्सचेंजों में सूचीबद्ध थे। वर्ष 1995-1996 तक यह एक लाभ अर्जित करने वाली कंपनी थी तथा अपने अंशधारकों को निरंतर लाभांश घोषित करती रही थी।

41. भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा वर्ष 1997 से 2003 के दौरान विभिन्न परिपत्र जारी किए गए, जिनके माध्यम से गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों की गतिविधियों का विनियमन किया गया तथा इन कंपनियों द्वारा जमा स्वीकार करने पर कड़े प्रतिबंध लगाए गए। जो कंपनियाँ उपर्युक्त निर्देशों का अनुपालन नहीं कर रही थीं, उन्हें जमा स्वीकार करना बंद करने तथा उन्हें तत्काल पुनर्भुगतान करने का निर्देश दिया गया। यह भी कंपनी का स्वीकृत मामला है कि भारतीय रिज़र्व बैंक ने धारा 45एन के अंतर्गत अपने अधिकारों का प्रयोग करते हुए वर्ष 2005 में अपीलकर्ता कंपनी के लेखा पुस्तकों का निरीक्षण किया। निरीक्षण प्रतिवेदन में भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 के उल्लंघनों का खुलासा हुआ, जिन्हें हमने इस निर्णय के पूर्व भाग में उल्लेखित किया है। यह भी स्वीकृत है कि दिनांक 18 जनवरी, 2005 को भारतीय रिज़र्व बैंक ने भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 45एमबी(1) के अंतर्गत अपने अधिकारों का प्रयोग करते हुए अपीलकर्ता कंपनी को एक परिपत्र जारी किया, जिसके द्वारा उसे "किसी भी व्यक्ति से किसी भी रूप में, चाहे वह नवीन जमा के रूप में हो या विद्यमान जमा के नवीनीकरण के रूप में अथवा अन्य किसी प्रकार से, अगले आदेश तक जमा स्वीकार करने से" प्रतिषिद्ध किया गया। अपीलकर्ता कंपनी को यह

भी निर्देशित किया गया कि वह भारतीय रिज़र्व बैंक की पूर्व अनुमति के बिना अपनी संपत्तियों या परिसंपत्तियों का विक्रय, अंतरण, बंधक सृजन या किसी भी प्रकार से व्यवहार न करे। यह भी स्वीकृत है कि उपर्युक्त सूचना-पत्र दिनांक 20 जनवरी, 2005 को इंडियन एक्सप्रेस में प्रकाशित किया गया था। उक्त सूचना-पत्र में इसके उद्देश्य को इस प्रकार रेखांकित किया गया था कि "**इंटीग्रेटेड फाइनेंस कंपनी लिमिटेड, चेन्नई द्वारा जमा स्वीकार करने पर प्रतिबंध तथा परिसंपत्तियों के अंतरण पर निषेध"**। अपीलकर्ता का यह दावा था कि उक्त दिनांक 18/20 जनवरी, 2005 के सूचना-पत्र से उत्पन्न प्रतिबंधों तथा उसके कारण हुई व्यापक प्रचार-प्रसार के परिणामस्वरूप गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनी को अपने संचालन को चलाने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। चूँकि कंपनी को अपनी लाभप्रदता में गिरावट के कारण संचालन में गंभीर समस्याएँ आ रही थीं, अतः उसने अपने लेनदारों, अर्थात् जमाकर्ताओं तथा बांड धारकों, के साथ समझौते की एक योजना प्रस्तावित की। इस योजना को अपीलकर्ता कंपनी के निदेशक मंडल द्वारा दिनांक 19 मई, 2005 को अनुमोदित किया गया। इस योजना की मुख्य विशेषताओं को हम पूर्व में उल्लेखित कर चुके हैं, जिसे कंपनी अधिनियम की धारा 391 के अंतर्गत मद्रास उच्च न्यायालय के कंपनी न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया था।

<u>हमारे निष्कर्ष:</u>

42. हमारे समक्ष उत्पन्न होने वाला प्रमुख विवाद यह है कि क्या भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम के अध्याय III-बी में निहित प्रावधानों के दृष्टिगत ऐसी व्यवस्था योजना प्रस्तुत की जा सकती थी। यदि इसे प्रस्तुत किया जा सकता था, तो क्या इसे भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 45क्यूए में निहित प्रावधानों का अनुपालन किए बिना अनुमोदित किया जा सकता था। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया कि उच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष निकाला है कि इस योजना को "इतना अत्यधिक अनुचित नहीं कहा जा सकता कि यह न्यायालय के आक्रोश को आमंत्रित करे।"

उच्च न्यायालय ने यह भी उचित रूप से अभिधारित किया कि कंपनी न्यायालय से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वह हितधारकों के विवेक के स्थान पर अपना स्वयं का विवेक प्रतिस्थापित करे। उच्च न्यायालय ने यह भी पाया कि धारा 391 से 394 के अंतर्गत योजना के अनुमोदन हेतु सभी प्रक्रियात्मक आवश्यकताओं का अनुपालन किया गया है। उच्च न्यायालय ने यह भी स्वीकार किया कि जमाकर्ताओं के अत्यधिक बहुमत ने इस योजना को अनुमोदित किया है, तथापि अपीलकर्ता को इस आधार पर राहत प्रदान नहीं की गई कि यह योजना भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम के अध्याय III-बी में निहित प्रावधानों के अनुरूप नहीं है।

43. हम विद्वान अधिवक्ता के इस प्रतिवेदन को स्वीकार करने में असमर्थ हैं कि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 45 क्यूए, कंपनी अधिनियम की धारा 391 से 394 के अंतर्गत किसी योजना के लिए अवरोध नहीं है। कंपनी अधिनियम की धारा 391 के अंतर्गत, योजना का अनुमोदन करते समय कंपनी न्यायालय मात्र औपचारिक स्वीकृति प्रदान करने वाला प्राधिकरण नहीं होता। कंपनी न्यायालय को यह संतुष्ट होना आवश्यक है कि संबंधित लेनदारों की बैठकें विधिवत् आयोजित की गई हैं। उसे यह भी संतुष्ट होना होता है कि उक्त बैठकों में लेनदारों अथवा किसी वर्ग के सदस्यों को ऐसा प्रासंगिक सामग्री प्रदान किया गया है, जिससे वे यह निर्णय लेने में सक्षम हों कि योजना न्यायसंगत एवं उचित है या नहीं। न्यायालय को यह भी निष्कर्ष निकालना आवश्यक है कि प्रस्तावित समझौता या व्यवस्था योजना किसी विधि के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन नहीं करती है तथा लोक नीति के प्रतिकूल नहीं है। इसके अतिरिक्त, न्यायालय को यह भी संतुष्ट होना आवश्यक है कि सदस्य अथवा सदस्यों का वर्ग या लेनदार, जो बहुमत में हो सकते हैं, सद्भावपूर्वक कार्य कर रहे हैं तथा उन्होंने अल्पसंख्यक को किसी प्रकार से समझौते के लिए बाध्य नहीं किया है। सर्वोपरी, न्यायालय को यह संतुष्ट होना आवश्यक है कि योजना उस दृष्टिकोण से न्यायसंगत और युक्तिसंगत है, जैसा कि एक विवेकशील व्यवसायी वाणिज्यिक निर्णय लेते समय करता

है, जो उसके द्वारा प्रतिनिधित्व किए गए वर्ग के हित में हो। **[देखें मिहीर एच. मफतलाल (उपरोक्त)]** यह सत्य है कि योजना के अनुमोदन के समय कंपनी न्यायालय को किसी उच्च लेखा परीक्षक के रूप में कार्य करने की आवश्यकता नहीं है। निस्संदेह, अनुमोदन के प्रस्ताव पर विचार करते समय कंपनी न्यायाधीश को योजना का परीक्षण किसी *त्रुटि खोजने वाले आलोचक, अत्यधिक सूक्ष्म भेद करने वाले विशेषज्ञ, अत्यंत सूक्ष्मता से लेखा परीक्षण करने वाले लेखाकार अथवा अत्यधिक कठोर विद्वान अधिवक्ता* के रूप में करने की आवश्यकता नहीं है। तथापि, साथ ही यह भी आवश्यक है कि न्यायालय केवल इस आधार पर कि योजना को इसके लिए आयोजित बैठक में आवश्यक बहुमत द्वारा अनुमोदन प्राप्त हो गया है, सतही रूप से अपनी स्वीकृति की मुहर न लगाए। न्यायालय का यह दायित्व है कि वह यह सुनिश्चित करे कि सभी विधिक आवश्यकताओं का अनुपालन किया गया है। साथ ही, न्यायालय को यह भी सुनिश्चित करना होता है कि व्यवस्था योजना किसी प्रकट कारण से भिन्न किसी अन्य उद्देश्य के लिए मात्र एक आवरण न हो। [*देखें यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया के विनिर्दिष्ट उपक्रम के प्रशासक (उपरोक्त), कंडिका 32*] यदि उपर्युक्त आवश्यकताओं में से कोई भी योजना में अपूर्ण पाई जाती है, तो न्यायालय योजना के अधीन प्रत्यक्षतः प्रदर्शित निगमित उद्देश्य के आवरण को भेद सकता है तथा उसका न्यायसंगत रूप से परीक्षण कर सकता है। [*देखें मिहीर एच. मफतलाल (उपरोक्त)*]

44. उपर्युक्त के परिप्रेक्ष्य में यह विचारणीय है कि क्या ऐसी योजना, जो भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 45 क्यूए के प्रावधानों का अनुपालन नहीं करती है, अनुमोदित की जा सकती है। उच्च न्यायालय ने समस्त मामले पर सावधानीपूर्वक विचार करने के पश्चात यह निष्कर्ष निकाला है कि योजना विफल होनी चाहिए, क्योंकि यह भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 45 क्यूए(1) में निहित प्रावधानों का अनुपालन नहीं करती है। इस कठिनाई से उबरने के लिए, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया कि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम का अध्याय III-बी एक पूर्ण संहिता नहीं है। इसके अतिरिक्त,

यह भी तर्क प्रस्तुत किया गया कि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम तथा कंपनी अधिनियम को उनके-अपने क्षेत्र में पढ़ा जाना चाहिए, क्योंकि दोनों पूर्णतः भिन्न क्षेत्रों में कार्य करते हैं। हम पक्षकारों के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत उपर्युक्त प्रतिवेदन से सहमत होने में असमर्थ हैं।

45. भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम के अध्याय III-बी को भारतीय रिज़र्व बैंक (संशोधन) अध्यादेश, 1997 के माध्यम से अधिनियमित किया गया, जिसे पश्चात् भारतीय रिज़र्व बैंक (संशोधन) अधिनियम, 1997 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया। उद्देश्य एवं कारण विवरण से यह पूर्णतः स्पष्ट होता है कि संशोधन से पूर्व, अविनियमित निकाय वैधानिक प्रतिबंधों से बचने के लिए विभिन्न साझेदारी फर्मों का गठन करते थे, जैसे ही किसी फर्म में जमाकर्ताओं की संख्या 250 तक पहुँचती थी। यह भी पुनः प्रतिपादित किया गया कि अनेक अविनियमित निकाय विभिन्न माध्यमों के द्वारा अत्यंत आक्रामक विज्ञापन करते हुए, उच्च ब्याज दरों तथा अन्य प्रोत्साहनों की पेशकश करके जनता से जमा आमंत्रित कर रहे थे। संशोधन अधिनियम द्वारा गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के लिए उनकी व्यवहार्यता सुनिश्चित करने हेतु अनेक सुरक्षा उपाय प्रदान किए गए हैं। इसमें गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों का भारतीय रिज़र्व बैंक के साथ अनिवार्य पंजीकरण, न्यूनतम निधि आवश्यकताओं का निर्धारण, आरक्षित निधियों का सृजन तथा प्रतिवर्ष लाभ के एक निश्चित प्रतिशत का उस निधि में अंतरण, तथा तरलता आवश्यकताओं का निर्धारण सम्मिलित है। भारतीय रिज़र्व बैंक को यह भी अधिकार प्रदान किया गया है कि वह इन कंपनियों के सुदृढ़ एवं स्वस्थ संचालन तथा उनकी परिसंपत्तियों की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के उद्देश्य से दिशा-निर्देश जारी कर सके। भारतीय रिज़र्व बैंक को यह भी अधिकार प्रदान किया गया कि वह गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के लेखा परीक्षकों को विशेष लेखा परीक्षण कराने हेतु निर्देश जारी कर सके, गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों द्वारा जमा स्वीकार करने पर प्रतिबंध लगा सके तथा उनके परिसमापन के लिए आवेदन प्रस्तुत कर सके। यह विशेष रूप से अभिलक्षित किया गया कि

पूर्व में जमाकर्ताओं के लिए अपनी शिकायतों के निवारण हेतु एकमात्र उपाय विधि न्यायालय का सहारा लेना था। तथापि, संशोधन द्वारा कंपनी विधि बोर्ड को यह शक्ति प्रदान की गई कि वह चूककर्ता गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों को जमाओं तथा उस पर देय ब्याज के पुनर्भुगतान हेतु निर्देश दे सके, ताकि जमाकर्ताओं के हितों की रक्षा की जा सके। अविनियमित निकायों को, यदि वे निगमित नहीं हैं, तो व्यक्तिगत उपयोग के अतिरिक्त किसी अन्य उद्देश्य के लिए जमा स्वीकार करने से पूर्णतः प्रतिबंधित कर दिया गया है। उन्हें विनियामक ढाँचे के अंतर्गत स्वयं को निगमित करने के पश्चात ही जमा स्वीकार करना जारी रखने की अनुमति दी गई है। अविनियमित निकायों को किसी भी रूप में किसी प्रकार का विज्ञापन जारी करने से भी विशेष रूप से प्रतिषिद्ध किया गया है। वास्तविक आशय कंडिका 6 में निरूपित किया गया है, जो इस प्रकार है:-

> "6. यह प्रतिवेदन प्राप्त हुए हैं कि अनेक वित्तीय कंपनियाँ तथा अविनियमित निकाय, जिन्होंने आकर्षक प्रतिफल तथा प्रोत्साहनों के लालच में आए असावधान जमाकर्ताओं से जमा संकलित किए थे, उन जमाओं के पुनर्भुगतान में विफल रही हैं। विभिन्न पक्षों द्वारा इस बात पर चिंता व्यक्त की गई है कि ऐसी कंपनियों तथा अविनियमित निकायों की गतिविधियों को विनियमित करने के लिए त्वरित कदम उठाए जाने की आवश्यकता है।

46. उपर्युक्त उद्देश्य एवं कारणों को दृष्टिगत रखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम का अध्याय III-बी एक स्व-निहित संहिता है। हमारे लिए अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के इस प्रतिवेदन को स्वीकार करना संभव नहीं है कि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम तथा कंपनी अधिनियम पृथक एवं भिन्न क्षेत्रों में कार्य करते हैं। हम अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क को भी स्वीकार करने में असमर्थ हैं कि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम में निहित प्रावधान, जो विनियामक प्रकृति के हैं, कंपनी

अधिनियम के अंतर्गत अनुमोदन हेतु प्रस्तुत योजनाओं पर लागू नहीं होंगे। हम यहाँ यह भी उल्लेख कर सकते हैं कि अपीलकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने इस संदर्भ में हरिदास एक्सपोर्ट्स (उपरोक्त) पर अवलंबित किया। उक्त वाद में, इस न्यायालय ने एक व्यापक विश्लेषण करते हुए एकाधिकार एवं प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम, 1969 तथा सीमा शुल्क शुल्क अधिनियम, 1975 का परीक्षण किया और यह निष्कर्ष निकाला कि उक्त दोनों अधिनियम मुख्यतः भिन्न क्षेत्रों में कार्य करते हैं तथा इस कारण सीमा शुल्क शुल्क अधिनियम की धारा 9-ए के प्रावधानों को एकाधिकार एवं प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम, 1969 की धारा 33(1)(जे) के प्रावधानों को निरस्त करने के रूप में अभिप्रेत नहीं माना जा सकता। चूँकि हमारे समक्ष विचाराधीन विवाद का मुख्य मुद्दा *हरिदास एक्सपोर्ट्स* (उपरोक्त) के वाद से भिन्न है, अतः उक्त वाद अपीलकर्ता कंपनी के लिए किसी प्रकार से सहायक नहीं है।

47. हम अपीलकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता तथा अपीलकर्ता के समर्थन में हस्तक्षेपकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत इस प्रतिवेदन को भी स्वीकार करने में असमर्थ हैं कि धारा 45 क्यूए में निहित अनन्य प्राधान्य उपबंध का प्रभाव कंपनी अधिनियम की धारा 391 से 394 में निहित प्रावधानों पर प्रभावी नहीं होगा। हम श्री चागला द्वारा प्रस्तुत इस अतिरिक्त तर्क को भी स्वीकार करने में असमर्थ हैं कि यदि धारा 45 क्यूए को अधिरोहण प्रभाव प्रदान किया जाता है, तो गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के संबंध में धारा 391 के प्रावधान निरर्थक हो जाएंगे। हम अपीलकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के इस प्रतिवेदन से भी प्रभावित नहीं हैं कि धारा 45 क्यू में निहित अनन्य प्राधान्य उपबंध को सीमित रूप में लागू किया जाना चाहिए। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णयों के आधार सिद्धांत को लागू करने पर भी, भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 45 क्यू में निहित अनन्य प्राधान्य उपबंध की प्रयोज्यता के क्षेत्र को सीमित करने का कोई औचित्य नहीं है। यह स्पष्ट और निर्विवाद शब्दों में उपबंधित करता है कि अध्याय III-बी के प्रावधान, *किसी अन्य विधि में निहित किसी भी*

असंगत प्रावधान के होते हुए भी प्रभावी रहेंगे। यह अधिरोहण प्रभाव न केवल वर्तमान में प्रवर्तित किसी अन्य विधि पर लागू होता है, बल्कि ऐसे किसी भी साधन पर भी लागू होता है, जिसे ऐसी विधि के कारण प्रभाव प्राप्त हुआ हो। इस प्रकार का स्पष्ट अधिरोहण प्रभाव प्रदान करने के कारण, संशोधन अधिनियम में वर्णित उद्देश्य एवं कारणों से स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं। समाज के निर्धन वर्गों के शोषण की व्यापकता, जिसके परिणामस्वरूप असंख्य परिवारों का पूर्ण विनाश हुआ, गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों को कठोर नियंत्रण में लाने का मूल प्रेरक कारण था। अतः हमें यह निष्कर्ष निकालने में कोई संकोच नहीं है कि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम का अध्याय III-बी अपने आप में एक पूर्ण संहिता है। कंपनी अधिनियम एक पूर्व अधिनियम है, क्योंकि इसे वर्ष 1956 में अधिनियमित किया गया था, जबकि अध्याय III-बी को भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम (1963 का अधिनियम संख्या 55) में वर्ष 1964 से प्रभावी करते हुए जोड़ा गया। धारा 45 क्यूए को अधिनियम संख्या 23 वर्ष 1997 द्वारा दिनांक 9 जनवरी, 1997 से प्रभावी किया गया। इस प्रकार, भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम के प्रावधान, कंपनी अधिनियम पर प्रभावी होंगे, क्योंकि यह एक पश्चातवर्ती अधिनियम है। यह विधि का स्थापित सिद्धांत है कि पश्चातवर्ती अधिनियम पूर्ववर्ती अधिनियम को अधिरोहित करेगा। इस संदर्भ में हम *टाटा मोटर्स लिमिटेड* (उपरोक्त) के प्रासंगिक कंडिकाओं का उल्लेख करना उपयोगी समझते हैं, जो निम्नलिखित हैं:-

> "**21.** श्री सुंदरम द्वारा यह स्वीकार किया गया कि सिका, वर्ष 1956 के अधिनियम की तुलना में एक विशेष विधि होने के कारण, उस पर प्रभावी होगी। तथापि, विद्वान अधिवक्ता ने अपने इस प्रतिवेदन को इस प्रकार सीमित किया कि सिका केवल उसी स्थिति में कंपनी अधिनियम के प्रावधानों को अपवर्जित करती है, जब दोनों के प्रावधान परस्पर असंगत हों।
>
> **22.** विशेष अधिनियम के प्रावधान सामान्य अधिनियम के प्रावधानों पर प्रभावी होंगे। पश्चातवर्ती अधिनियम पूर्ववर्ती अधिनियम पर अधिरोहित

> होगा। वर्ष 1956 का अधिनियम एक सामान्य अधिनियम है। यह कंपनियों तथा कुछ अन्य संघों से संबंधित विधि का समेकन एवं पुनर्व्यवस्थापन करता है। यह समय की दृष्टि से सिका से पूर्व का अधिनियम है।
>
> **23.** जहाँ कहीं भी दोनों अधिनियमों के प्रावधानों में कोई असंगति परिलक्षित होती है, वहाँ सिका प्रभावी होगी। इसके अतिरिक्त, सिका अपने आप में एक पूर्ण संहिता है। इसमें धारा 32 में एक अनन्य प्राधान्य उपबंध भी निहित है।
>
> **24.** सिका एक विशेष अधिनियम है। यह अपने आप में एक स्व-निहित संहिता है। जिस वाद में बीआईएफआर के समक्ष संदर्भ प्रस्तुत किया गया हो, उसमें कंपनी न्यायाधीश का क्षेत्राधिकार सिका के प्रावधानों के अधीन होगा।

48. हमारे मत में, अध्याय III-बी को धारा 45 क्यू को समाविष्ट करके सभी अन्य विधियों, जिनमें कंपनी अधिनियम भी सम्मिलित है, पर अधिरोहण प्रभाव प्रदान किया गया है, इस स्पष्ट आशय के साथ कि गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनी के मामले में कंपनी अधिनियम की धारा 391 के अंतर्गत किसी योजना पर विचार नहीं किया जा सकता, जब तक कि वह भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 45 क्यूए के प्रावधानों के अनुरूप न हो।

49. हम यहाँ संक्षेप में उन निर्णयों का उल्लेख कर सकते हैं, जिन पर अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस प्रतिवेदन के समर्थन में अवलंबित किया कि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 45 क्यू में निहित अनन्य प्राधान्य उपबंध का प्रभाव कंपनी अधिनियम की धारा 391 से 394 पर अधिरोहणकारी नहीं होगा। इस संदर्भ में *अश्विनी कुमार घोष (उपरोक्त), माधव राव जीवाजी राव सिंधिया (उपरोक्त), ए.जी. वरदराजुलु (उपरोक्त), आईसीआईसीआई बैंक लिमिटेड (उपरोक्त), आर.एस. रघुनाथ तथा जेआईके इंडस्ट्रीज़ लिमिटेड (उपरोक्त)* पर अवलंबित किया गया। उक्त वाद निःसंदेह उस स्थापित विधि को पुनः

प्रतिपादित करते हैं, जिसके अनुसार किसी विशेष अनन्य प्राधान्य उपबंध की व्याख्या की जानी चाहिए। अश्विनी कुमार घोष (उपरोक्त) में इस न्यायालय ने यह अभिधारित किया कि "अनन्य प्राधान्य उपबंध की व्याख्या संकीर्ण रूप से की जानी चाहिए तथा न्यायालय को यह निर्धारित करने का प्रयास करना चाहिए कि विधायिका ने किस सीमा तक एक प्रावधान को दूसरे प्रावधान पर अधिरोहण प्रभाव प्रदान करने का अभिप्राय रखा है।" इसी प्रकार के अवलोकन इस न्यायालय द्वारा अपीलकर्ता द्वारा उद्धृत अन्य वादों में भी पुनः दोहराए गए। चूँकि हम पहले ही यह अभिलक्षित कर चुके हैं कि संसद ने स्पष्ट रूप से भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम के अध्याय III-बी को कंपनी अधिनियम की धारा 391 से 394 पर अधिरोहण प्रभाव प्रदान करने का अभिप्राय रखा है, अतः उपर्युक्त अवलोकन अपीलकर्ताओं के इस प्रतिवेदन के समर्थन में किसी प्रकार से सहायक नहीं होंगे कि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 45क्यू तथा/अथवा धारा 45क्यूए, कंपनी अधिनियम की धारा 391 से 394 पर अधिरोहण प्रभाव नहीं डालेगी।

50. अतः, हम उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त मत का अनुमोदन करते हैं कि उक्त *योजना केवल इस उद्देश्य से प्रस्तुत की गई है कि लघु जमाकर्ताओं को पुनर्भुगतान से बचा जा सके*, क्योंकि इसमें यह परिकल्पना की गई है कि जमा की शर्तों एवं नियमों के अनुसार राशि का पुनर्भुगतान करने के स्थान पर, उक्त राशि को 6% ब्याज दर पर परिवर्तनीय डिबेंचरों के रूप में माना जाएगा, जिसे एक वर्ष की अवधि के भीतर इक्विटी अंशों में परिवर्तित कर दिया जाएगा। ऐसा उपबंध स्पष्ट रूप से धारा 45क्यूए(1) के अनिवार्य प्रावधानों के प्रतिकूल है, जिसमें यह अपेक्षित किया गया है कि "गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनी द्वारा स्वीकृत प्रत्येक जमा, जब तक उसका नवीनीकरण न किया जाए, उस जमा की शर्तों एवं नियमों के अनुसार पुनर्भुगतान किया जाएगा।" अपीलकर्ताओं द्वारा किया गया यह चतुर प्रयास वस्तुतः उस संशोधन के समावेशन को उचित ठहराता है, जिसे स्पष्टतः जमाकर्ताओं के हितों की रक्षा करने तथा ऐसे *असहाय एवं निर्धन जमाकर्ताओं के शोषण को रोकने के उद्देश्य*

से अधिनियमित किया गया है, जिन्हें अपीलकर्ता जैसी गैर-बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं द्वारा शोषित किया जा सकता है। यही कारण है कि अध्याय III-बी में स्पष्ट रूप से उपबंधित किया गया है कि उसमें निहित प्रावधान ऐसे सभी अन्य विधियों पर प्रभावी होंगे, जो उनसे असंगत हैं। यह प्रावधान कंपनी अधिनियम की धारा 391 से 394 पर भी समान रूप से लागू होगा।

51. कंपनी अधिनियम तथा भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम दोनों ही केंद्रीय अधिनियम हैं। अध्याय III-बी, जिसे अधिनियम संख्या 55 वर्ष 1963 द्वारा दिनांक 1 दिसंबर, 1964 से प्रभावी करते हुए समाविष्ट किया गया, एक पश्चातवर्ती अधिनियम होने के कारण स्पष्ट रूप से प्रभावी होगा। हम अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के इस प्रतिवेदन से सहमत होने में असमर्थ हैं कि यदि धारा 45 क्यूए की ऐसी व्याख्या की जाए, तो कंपनी अधिनियम की धारा 391 से 394 निरर्थक हो जाएँगी।

52. इस परिस्थिति का सामना करते हुए, श्री श्याम दीवान, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया कि वस्तुतः भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 45 क्यूए तथा कंपनी अधिनियम की धारा 391 से 394 के मध्य कोई असंगति नहीं है। यह प्रतिवेदन किया गया कि धारा 391 से 394 के अंतर्गत व्यवस्था योजना, अनुबंध के नवकरण का एक रूप है। अनुबंध अधिनियम के अंतर्गत प्रत्येक व्यक्तिगत पक्ष को अनुबंध की शर्तों एवं नियमों में परिवर्तन करने का अधिकार प्राप्त है। अतः डिबेंचर धारकों द्वारा कम अंकित मूल्य का नगद भुगतान स्वीकार करना अथवा डिबेंचरों का अंशों में विनिमय करना, केवल उस प्रचलन की निरंतरता है, जो उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से प्रचलित रहा है। इस प्रतिवेदन के समर्थन में उन्होंने *चार्ल्सवर्थ्स कंपनी लॉ, अठारहवाँ संस्करण, पृष्ठ 771-72* पर अवलंबित किया, जो निम्नलिखित है:-

> "'व्यवस्था' शब्द का अर्थ अत्यंत व्यापक है तथा यह 'समझौता' शब्द से अधिक विस्तृत है। एक व्यवस्था में यह सम्मिलित हो सकता है कि डिबेंचर धारक भुगतान के लिए समय-विस्तार प्रदान करें, अपने डिबेंचरों के अंकित

> मूल्य से कम नगद भुगतान स्वीकार करें, अपनी प्रतिभूति को पूर्णतः या आंशिक रूप से त्याग दें, अपने डिबेंचरों का कंपनी के अंशों में या किसी नई कंपनी के अंशों में विनिमय करें, अथवा उनके डिबेंचरों से संबद्ध अधिकारों में किसी अन्य प्रकार से परिवर्तन किया जाए। लेनदार अपने दावों के आंशिक भुगतान के रूप में नगद स्वीकार कर सकते हैं तथा शेष राशि कंपनी के अंशों या डिबेंचरों के रूप में प्राप्त कर सकते हैं। वरीयता अंशधारक लाभांश के बकाये पर अपने अधिकारों का परित्याग कर सकते हैं, भविष्य में कम दर से लाभांश स्वीकार करने पर सहमत हो सकते हैं, अथवा उनके वर्गाधिकारों में अन्य किसी प्रकार से परिवर्तन किया जा सकता है।"

हमारे मत में, उपर्युक्त अवलोकन अपीलकर्ताओं के लिए किसी प्रकार से सहायक नहीं होंगे, क्योंकि हमारे द्वारा पूर्व में अभिलिखित निष्कर्षों के अनुसार वर्तमान व्यवस्था सद्भावनापूर्ण नहीं है।

53. हम यह भी मत व्यक्त करते हैं कि धारा 45 क्यू में निहित स्पष्ट प्रावधानों के रहते, जो कि सभी अन्य विधियों पर अधिरोहण प्रभाव रखते हैं, नवकरण का कोई प्रश्न उत्पन्न ही नहीं होता, क्योंकि यह प्रभाव अनुबंध अधिनियम में निहित नवकरण के सिद्धांत को भी निरस्त कर देता है। चूँकि हम पहले ही अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के इस प्रतिवेदन को अस्वीकार कर चुके हैं कि प्रत्येक व्यक्तिगत जमाकर्ता को अनुबंध में परिवर्तन करने, अर्थात् अनुबंध का नवकरण करने का अधिकार था, अतः यह स्वीकार करना संभव नहीं है कि चूँकि योजना को आवश्यक बहुमत द्वारा अनुमोदित कर दिया गया है तथा न्यायालय द्वारा अनुमोदित भी किया गया है, इसलिए यह अल्पसंख्यक पर भी बाध्यकारी होगी। इस प्रतिवेदन के समर्थन में, विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय द्वारा *जे.के. (बॉम्बे) प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) तथा यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया के विनिर्दिष्ट उपक्रम के प्रशासक* (उपरोक्त) में किए गए अवलोकनों पर अवलंबित किया है। उपर्युक्त के आधार पर यह प्रस्तुत

किया गया कि यदि पक्षकार व्यक्तिगत रूप से शर्तों एवं नियमों का नवकरण कर सकते थे, तो ऐसी व्यवस्था योजना के माध्यम से किए गए नवकरण पर कोई प्रतिबंध नहीं है। जिन अवलोकनों पर अवलंबित किया गया है, वे निम्नलिखित हैं:-

> "**28.** ... सिद्धांत यह है कि न्यायालय द्वारा अनुमोदित योजना मात्र पक्षकारों के बीच एक साधारण समझौते के रूप में कार्य नहीं करती; यह कंपनी, लेनदारों तथा अंशधारकों पर बाध्यकारी हो जाती है और उसे वैधानिक बल प्राप्त होता है, अतः संयुक्त देनदार समन्वय एवं संतुष्टि के सिद्धांत का आश्रय नहीं ले सकता। अधिनियम की धारा 391 के प्रावधानों के अनुसार, योजना उन लेनदारों एवं अंशधारकों पर भी वैधानिक रूप से बाध्यकारी होती है, जिन्होंने उसके अनुमोदन से असहमति व्यक्त की हो या उसका विरोध किया हो। इस अर्थ में इसे वैधानिक बल प्राप्त होता है और अतः इसे न्यायालय के अनुमोदन के बिना परिवर्तित नहीं किया जा सकता, भले ही अंशधारक तथा लेनदार ऐसे परिवर्तन के लिए सहमति क्यों न प्रदान करें (देखें प्रमिला देवी बनाम पीपुल्स बैंक)। योजना का प्रभाव यह होता है कि "उस प्रक्रिया का आश्रय लेकर, जो इसके अंतर्गत निर्दिष्ट है, उस व्यक्तिगत सहमति के अभाव की पूर्ति की जाती है, जो अन्यथा प्रत्येक वर्ग के प्रत्येक सदस्य द्वारा योजना से बंधे रहने के लिए आवश्यक होती।" (पाल्मर का कंपनी विधि, 20वाँ संस्करण, पृष्ठ 664)। अधिनियम की धारा 391 की उपधारा (2) के अंतर्गत निर्धारित बहुमत का निर्णय लेनदारों तथा अंशधारकों के अल्पसंख्यक को बाध्य करने की अनुमति देता है और इसी कारण से कहा जाता है कि योजना का वैधानिक संचालन होता है तथा इसे अंशधारकों या लेनदारों द्वारा परिवर्तित नहीं किया जा सकता, जब तक कि ऐसे परिवर्तन को न्यायालय द्वारा अनुमोदित न किया जाए।"

54. हम उपर्युक्त प्रतिवेदन को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। उपर्युक्त अवलोकन

उस स्थापित विधिक स्थिति की पुनरावृत्ति करते हैं कि समस्त विधिक औपचारिकताओं का पालन करने के पश्चात विधिवत् अनुमोदित योजना सभी अंशधारकों पर बाध्यकारी होती है। वर्तमान वाद में, योजना धारा 45 क्यू के प्रत्यक्ष प्रतिकूल है तथा इसे उच्च न्यायालय द्वारा सही रूप से अनुमोदित नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त, योजना को उचित रूप से सद्भावनापूर्णता के अभाव में तथा *लोक नीति* के प्रतिकूल भी माना गया है। यह योजना भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 45 क्यूए(1) के अनिवार्य उपबंध से बचने के अप्रत्यक्ष उद्देश्य से प्रस्तुत की गई है।

55. हम अपीलकर्ता के इस प्रतिवेदन को भी स्वीकार करने के लिए प्रवृत्त नहीं हैं कि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 45 क्यूए, कंपनी अधिनियम की धारा 58 ए के *समान विषयवस्तु* वाली है, यदि पूर्णतः समान नहीं है। आगे यह भी तर्क प्रस्तुत किया गया कि यदि उत्तरवर्ती धारा के अंतर्गत व्यवस्था योजना पर कोई प्रतिबंध नहीं है, तो पूर्ववर्ती अर्थात् भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 45 क्यूए के अंतर्गत भी ऐसा प्रतिबंध नहीं माना जा सकता। धारा 45 क्यूए के कंपनी अधिनियम की धारा 58 ए के *समान विषयवस्तु* वाला होने का प्रश्न उत्पन्न ही नहीं होता, क्योंकि हमारे सुविचारित मत में भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम के प्रावधान कंपनी अधिनियम के प्रावधानों पर अधिरोहण प्रभाव रखते हैं। अतः यह प्रतिवेदन भी अस्वीकार किया जाता है।

56. उपर्युक्त के परिप्रेक्ष्य में, हम अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के इस प्रतिवेदन को अस्वीकार करते हैं कि व्यवस्था योजना को इस स्थिति में भी अनुमोदित किया जा सकता था, जबकि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम के अध्याय III-बी, विशेषतः धारा 45 क्यूए(1) के प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया गया है। हम यहाँ यह भी उल्लेख कर सकते हैं कि अपीलकर्ताओं के पास धारा 45 क्यूए(1) के अंतर्गत कंपनी विधि बोर्ड के समक्ष भुगतान के लिए अतिरिक्त समय प्राप्त करने हेतु आवेदन करने का अवसर उपलब्ध था। प्रतीत होता है कि ऐसा कोई आवेदन प्रस्तुत नहीं किया गया और इस प्रकार धारा

45 क्यूए(1) का पूर्ण उल्लंघन हुआ है। इससे अनिवार्यतः यह निष्कर्ष निकलता है कि व्यवस्था योजना का अनुमोदन नहीं किया जा सकता था।

दिनांक 18 जनवरी, 2005 के सूचना-पत्र के अप्रकटीकरण का प्रभाव

57. उपर्युक्त सूचना-पत्र कंपनी को धारा 45 एमबी(1) के अंतर्गत प्रेषित किया गया था। ऐसा सूचना-पत्र केवल उसी स्थिति में भेजा जाता है, जब कोई गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनी किसी धारा के प्रावधानों का उल्लंघन करती है अथवा अध्याय III-बी के अंतर्गत भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा दिए गए किसी निर्देश या आदेश का अनुपालन करने में विफल रहती है। इन प्रावधानों के अंतर्गत, भारतीय रिज़र्व बैंक को यह अधिकार प्राप्त है कि वह गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनी को किसी भी प्रकार का जमा स्वीकार करने से प्रतिषिद्ध कर सके। धारा 45 एमबी(2) के अंतर्गत, जमाकर्ताओं के हितों की रक्षा हेतु भारतीय रिज़र्व बैंक को यह भी अधिकार प्रदान किया गया है कि वह गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनी को बैंक की पूर्व अनुमति के बिना अपनी संपत्तियों एवं परिसंपत्तियों का विक्रय, अंतरण, प्रभार सृजन या किसी भी प्रकार से व्यवहार करने से प्रतिबंधित कर सके। यह एक स्वीकृत तथ्य है कि कंपनी को जमा स्वीकार न करने के निर्देश संबंधी आदेश दिनांक 20 जनवरी, 2005 को इंडियन एक्सप्रेस में विधिवत् प्रकाशित किए गए थे। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया है कि यह भी एक स्वीकृत तथ्य है कि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 की धारा 45 एन के अंतर्गत अपीलकर्ता कंपनी के लेखा पुस्तकों के निरीक्षण के दौरान अनेक उल्लंघन उजागर हुए थे। इन उल्लंघनों का विवरण इस निर्णय के पूर्व भाग में उद्धृत किया जा चुका है। जब कंपनी द्वारा किए गए सभी अनियमितताओं की जांच की जा रही थी, उसी दौरान लगभग दिनांक 19 मई, 2005 को व्यवस्था योजना कंपनी न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई। यह एक स्वीकृत तथ्य है कि दिनांक 18 जनवरी, 2005 का सूचना-पत्र उन अंशधारकों के समक्ष प्रकट नहीं किया गया, जो कंपनी न्यायालय के निर्देशों पर आयोजित बैठकों में उपस्थित थे। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, ऐसा अप्रकटीकरण कंपनी अधिनियम की धारा

391(2) के उपबंध के अंतर्गत आवश्यक नहीं था। किसी भी स्थिति में, विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, दिनांक 18 जनवरी, 2005 का सूचना-पत्र भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा विभिन्न समाचार पत्रों में व्यापक रूप से प्रकाशित किया जा चुका था, अतः समस्त जानकारी सार्वजनिक क्षेत्र में उपलब्ध थी। फलस्वरूप, धारा 391(2) के उपबंध की आवश्यकताओं का अनुपालन मान लिया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, श्री दातार के अनुसार, धारा 391(2) का उपबंध केवल उस न्यायालय के समक्ष प्रकटीकरण की अपेक्षा करता है जो योजना को अनुमोदित करता है, न कि उन लेनदारों या अंशधारकों के समक्ष जिनके साथ योजना की जाती है। अंशधारकों अथवा लेनदारों के समक्ष प्रकटीकरण की अपेक्षा धारा 393(1) के अंतर्गत निर्दिष्ट है, जो कि अपेक्षाकृत अधिक सीमित है। इस प्रतिवेदन के समर्थन में विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने इस न्यायालय के निर्णय *हिंदुस्तान लीवर एम्प्लॉइज़ यूनियन बनाम हिंदुस्तान लीवर लिमिटेड एवं अन्य (उपरोक्त)* पर अवलंबित किया है। तथापि, उक्त वाद वर्तमान वाद के तथ्यों एवं परिस्थितियों से भिन्न है। उसमें यह अभिधारित किया गया था कि:

> "इस वाद के तथ्यों में, जिस प्रबल रूप से अंशधारकों, लेनदारों, डिबेंचर धारकों तथा वित्तीय संस्थानों, जिनके पास टॉमको में 41% अंश थे, ने योजना का समर्थन किया है और उन्होंने सूचना के अभाव या योजना के विषय में समझ की कमी के संबंध में कोई आपत्ति नहीं उठाई है, हम इस मत के हैं कि यह कहना उचित नहीं होगा कि स्पष्टीकरण विवरण उचित नहीं था अथवा उसमें महत्वपूर्ण विवरणों का अभाव था।"

उपर्युक्त उद्धरण से यह स्पष्ट होता है कि उस वाद में योजना के विरुद्ध किसी भी हितधारक द्वारा कोई आपत्ति नहीं की गई थी। अतः उक्त वाद पर अवलंबन करना भ्रांतिपूर्ण है।

58. हमारे मत में, उच्च न्यायालय ने सही रूप से यह निष्कर्ष निकाला है कि

भले ही कंपनी अधिनियम की धारा 235 से 251 के अंतर्गत कोई जांच लंबित नहीं थी, तथापि कंपनी पर यह दायित्व था कि वह भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा धारा 45 एन के अंतर्गत उसके लेखा पुस्तकों के निरीक्षण के दौरान इंगित किए गए उल्लंघनों का प्रकटीकरण करे, जिसके परिणामस्वरूप दिनांक 18 जनवरी, 2005 का सूचना-पत्र जारी किया गया था। हमारे मत में, यह तथ्य स्पष्ट रूप से यह दर्शाता है कि कंपनी द्वारा प्रस्तावित व्यवस्था योजना सद्भावनापूर्ण नहीं थी। हमारे सुविचारित मत में, दिनांक 18 जनवरी, 2005 के पत्र से प्रकट भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा की गई एवं प्रारंभ की गई कार्रवाई का अप्रकटीकरण, महत्वपूर्ण तथ्यों के अप्रकटीकरण के समान है, जिनका प्रकटीकरण कंपनी अधिनियम की धारा 391(1) सहपठित धारा 393(1) के अंतर्गत आवश्यक है। कंपनी न्यायालय, व्यवस्था योजना की न्यायसंगतता एवं सद्भावना का परीक्षण करते समय, मात्र औपचारिक स्वीकृति प्रदान करने वाला प्राधिकरण नहीं होता। वह महत्वपूर्ण तथ्यों के स्पष्ट अप्रकटीकरण को, जो इस निर्णय को प्रभावित कर सकता है कि योजना को अनुमोदित किया जाना है या नहीं, अनदेखा नहीं कर सकता। हमारे मत में, उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता के इस प्रतिवेदन को अस्वीकार करने में कि दिनांक 18 जनवरी, 2005 के पत्र का अप्रकटीकरण महत्वपूर्ण नहीं था, किसी भी प्रकार की अधिकारिता संबंधी त्रुटि नहीं की है।

59. उउपर्युक्त कारणों के आधार पर, हम उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए कोई औचित्य नहीं पाते हैं। अतः अपीलें निरस्त की जाती हैं।

बिभूति भूषण बोस   अपीलें निरस्त की जाती हैं।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता । समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।